अल-हिलाल
मार्च-अप्रैल 2023

अल-रिसाला

मार्च-अप्रैल 2023

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

मोमिन : मुतवाज़े इंसान	3
तज़्किया क्या है?	4
तीन बातें	6
उम्मत का इम्तिहान	7
दरयाफ़्त की अज़्मत	9
आफ़ाक़ी मारिफ़त	10
आलमी इंज़ार	13
टीम स्पिरिट	15
उम्मत का ज़वाल	17
ज़वाल का ज़ाहिरा	18
तीन दौर	22
तमाम मसाइल का हल	23
मज़हबी रवादारी, तालीफ़-ए-क़ल्ब	25
मुताला-ए-हदीस (शरह मिश्कातुल मसाबीह)	26
क़ौल-ए-सदीद या मुतय्यन कलाम	44
तज़ाद में जीना	47
टर्मॉइल यानी परेशानी	48
डायरी 1986	49
हक़ीक़ी मोमिन	55
औलाद की तर्बियत	56
कैप्चा टेस्ट	57
अक़्वाल-ए-हिकमत	59
बहुत-से लोग मौलाना के एहसानमंद हैं	60
ख़बरनामा इस्लामी मरकज़— 279	61

मोमिन : मुतवाज़े इंसान

रिवायत में आता है कि उमर फ़ारूक़ ने अपने आख़िरी वक़्त में यह कलिमा कहा था—

أَبَانُ بْنُ عُثْمَانَ عَنْ عُثْمَانَ قَالَ:آخِرُ كَلِمَةٍ قَالَهَا عُمَرُ حَتَّى قَضَى:وَيْلِي وَوَيْلُ أُمِّي إِنْ لَمْ يَغْفِرِ اللهُ لِي. وَيْلِي وَوَيْلُ أُمِّي إِنْ لَمْ يَغْفِرِ اللهُ لِي. وَيْلِي وَوَيْلُ أُمِّي إِنْ لَمْ يَغْفِرِ اللهُ لِي.

(अत-तबक़ात अल-कुबरा, जिल्द 3, सफ़ा 275)

यानी अबान अपने बाप उस्मान बिन अफ़्फ़ान से रिवायत करते हैं, आख़िरी कलिमा, जो हज़रत उमर फ़ारूक़ ने अपने आख़िरी वक़्त में कहा था— "बरबादी है मेरे लिए और बरबादी है मेरी माँ के लिए, अगर अल्लाह ने मेरी मग़फ़िरत न की। बरबादी है मेरे लिए और बरबादी है मेरी माँ के लिए, अगर अल्लाह ने मेरी मग़फ़िरत न की। बरबादी है मेरे लिए और बरबादी है मेरी माँ के लिए, अगर अल्लाह ने मेरी मग़फ़िरत न की।"

वाक़यात बताते हैं कि अकसर सहाबा का यही एहसास था। वे अपने बारे में इसी क़िस्म के अल्फ़ाज़ बोलते थे, हत्ता कि वे लोग भी, जिन्हें अशरह-ए-मुबश्शिरा कहा जाता है। ऐसा क्यों है? इसका सबब यह है कि मोमिन आख़िरी हद तक मुतवाज़े (humble) इंसान होता है। अल्लाह की अज़्मत का एहसास उस पर इतना ज़्यादा ग़ालिब होता है कि वह अपने आपको 'बे-कुछ' और अल्लाह को 'सब कुछ' समझने लगता है। उसे महसूस होता है कि उसका केस सरापा इज्ज़ का केस है और उसके मुक़ाबले में अल्लाह रब्बुल आलमीन का केस सरापा क़ुदरत। अल्लाह रब्बुल

आलमीन देने वाला है और इंसान उसके मुक़ाबले में सिर्फ़ पाने वाला। अल्लाह रब्बुल आलमीन पूरे मआनों में एक कामिल हस्ती है, उसके मुक़ाबले में इंसान ग़ैर-कामिल हस्ती।

इस क़िस्म की सोच मोमिन को एक मुख़्तलिफ़ इंसान बना देती है। वह अल्लाह रब्बुल आलमीन के ज़िक्र-ओ-दुआ में जीने वाला बन जाता है। एक मोमिन की अस्ल ज़रूरत यह है कि वह अपने अंदर यह एहसास डेवलप करे, जिसे क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

يَاأَيُّهَا النَّاسُ أَنْتُمُ الْفُقَرَاءُ إِلَى اللَّهِ وَاللَّهُ هُوَ الْغَنِيُّ الْحَمِيدُ .

"ऐ लोगो, तुम अल्लाह के मोहताज हो और अल्लाह तो बेनियाज़ है, तारीफ़ वाला है। (35:15)

यह कैफ़ियत जब इंसान पर ग़ालिब आ जाए, तो उसका वही हाल होता है, जिसकी तस्वीर हमें अस्हाब-ए-रसूल के यहाँ नज़र आती है।

तज़्किया क्या है?

तज़्किया दरअसल शख़्सियत की दीनी तामीर का दूसरा नाम है। शख़्सियत की तामीर का यह अमल किसी ख़ुद-साख़्ता कोर्स के ज़रिये नहीं होता, बल्कि वह क़ुरआन-ओ-सुन्नत के तरीक़े को इख़्तियार करने से अंजाम पाता है। तज़्किया का लफ़्ज़ी मतलब है— पाक करना (purification)। पाक करना क्या है? इसका जवाब एक हदीस-ए-रसूल से मालूम होता है। इस हदीस का तर्जुमा यह है—

"हर पैदा होने वाला फ़ितरत पर पैदा होता है, फिर उसके वालिदैन उसे यहूदी बना देते हैं या नसरानी या मजूसी।"
(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1,385)

इस हदीस-ए-रसूल में यहूदी, नसरानी और मजूसी का लफ़्ज़ अलामती तौर पर आया है। इससे मुराद इंसान का पैदाइशी माहौल है। इसका मतलब है कि हर आदमी एक माहौल में पैदा होता है। यह माहौल मुसलसल तौर पर उसकी कंडीशनिंग (conditioning) करता रहता है, यहाँ तक कि वह उसे पूरे मअनों में एक कंडीशंड इंसान बना देता है। इसका मतलब यह है कि ख़ालिक़ की तरफ़ से आदमी फ़ितरत (nature) पर पैदा किया जाता है, लेकिन पैदा होने के बाद वह अपने माहौल से मुतास्सिर होने लगता है, यहाँ तक कि जब वह पुख़्तगी की उम्र को पहुँचता है तो उसका हाल यह होता है कि जो इंसान 'मिस्टर नेचर' के तौर पर पैदा हुआ था, वह 'मिस्टर कंडीशंड' इंसान बन जाता है। पैदाइश के वक़्त वह एक सादा इंसान होता है, लेकिन बाद में माहौल के असर से वह अपने माहौल की पैदावार (product) बन जाता है।

तज़्किया यह है कि आदमी अपना निगराँ आप बन जाए। वह ख़ुद का जायज़ा लेने की सलाहियत पैदा करे। वह अपने आपको माहौल की कंडीशनिंग से बचाकर अपनी अस्ल फ़ितरत पर ख़ुद को क़ायम रखे। तज़्किया एक ऐसा अमल है, जो आदमी को ख़ुद करना पड़ता है। आदमी के अंदर जब कोई मनफ़ी सोच आए, जब वह किसी बहकावे (temptation) से मुतास्सिर होकर फ़ितरत के रास्ते से हटने लगे तो उसका दाख़िली मुहासिब फ़ौरन उसे चौकन्ना कर दे और वह दोबारा अपनी फ़ितरत की तरफ़ वापस आ जाए। इसी अमल का नाम तज़्किया है और यही अमल आदमी को अबदी जन्नत का मुस्तहिक़ इंसान बनाता है। (ताहा, 20:76)

तीन बातें

मेरे नज़दीक क़ुरआन और हदीस में तीन बातें ऐसी हैं, जिनकी वाज़ेह तशरीह अभी तक नहीं की गई। वे तीन बातें यह हैं—

(1) سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنْفُسِهِمْ حَتَّى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقُّ.

"अनक़रीब हम उन्हें अपनी निशानियाँ दिखाएँगे, आफ़ाक़ में भी और ख़ुद उनके अंदर भी, यहाँ तक कि उन पर ज़ाहिर हो जाएगा कि यह हक़ है।" (41:53)

(2) إِنَّ اللهَ لَيُؤَيِّدُ هَذَا الدِّينَ بِالرَّجُلِ الفَاجِرِ.

"बेशक अल्लाह ज़रूर इस दीन की ताईद फ़ाजिर इंसान के ज़रिये करेगा।" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3,062)

(3) فِتْنَةُ الدُّهَيْمَاءِ، لَا تَدَعُ أَحَدًا مِنْ هَذِهِ الْأُمَّةِ إِلَّا لَطَمَتْهُ لَطْمَةً .

"(क़यामत के क़रीब) दुहेमा का फ़ित्ना होगा, वह इस उम्मत में से किसी को नहीं छोड़ेगा, मगर वह उसे हिट (hit) करेगा।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4,242)

ये तीनों बातें पेशीनगोई की नौइय्यत की हैं, मगर आज तक इस पेशीनगोई को मुतय्यन नहीं किया जा सका है। जिन अल्फ़ाज़ में ये तीनों पेशीनगोइयाँ आई हैं, उनसे ब-ज़ाहिर यह क़ियास किया जा सकता है कि ये तीनों वाक़यात पेश आ चुके हैं, मगर कोई अभी तक यह न बता सका कि इन पेशीनगोइयों से मुतय्यन तौर पर क्या मुराद है। इस मुद्दत में बेशुमार सतरें लिखी गई हैं और बेशुमार बातें बोली गई हैं, मगर

इस्लाम की मज़्कूरा पेशीनगोइयों के बारे में कोई तहक़ीक़ी बात अब तक सामने न आ सकी। यह क़ौम की आला फ़िक्र से महरूमी की एक नई क़िस्म है। वह यह है— 'अल्फ़ाज़ की भरमार के बावजूद मआनी का गुम होना।'

मेरा तजुर्बा है कि प्रिंटिंग प्रेस के दौर में जितने काग़ज़ सियाह किए गए हैं और जितने अल्फ़ाज़ बोले या लिखे गए हैं, वे सिर्फ़ बीसवीं सदी में इतने ज़्यादा हैं, जो पिछली पूरी तारीख़ में मौजूद न थे, मगर दौर-ए-जदीद के मेयार के मुताबिक़ ब-मआनी कलाम का ब-ज़ाहिर वजूद नज़र नहीं आता है। आप किसी भी तक़रीर या तहरीर को देखिए, तो आप ख़ुद महसूस करेंगे कि इसमें कोई 'टेक अवे' (take away) क़ारी के लिए मौजूद नहीं।

उम्मत का इम्तिहान

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का मिशन दावत-ए-इलल्लाह का मिशन था। इस काम की मतलूब अंजामदेही के लिए आपको यह हुक्म दिया गया कि आप हरगिज़ रुकुन न करें। इस सिलसिले में क़ुरआन की आयत यह है—

وَلَا تَرْكَنُوا إِلَى الَّذِينَ ظَلَمُوا فَتَمَسَّكُمُ النَّارُ وَمَا لَكُمْ مِنْ دُونِ اللَّهِ مِنْ أَوْلِيَاءَ ثُمَّ لَا تُنْصَرُونَ.

"और उनकी तरफ़ न झुको, जिन्होंने ज़ुल्म किया, वरना तुम्हें आग पकड़ लेगी और अल्लाह के सिवा तुम्हारा कोई मददगार नहीं, फिर तुम कहीं मदद न पाओगे।" (11:113)

रुकुन के मअनी हैं— झुकाव (tilt), अलग होना यानी क़ौम के तक़ाज़े, लोगों का दबाव, हालात की मस्लहत, इस क़िस्म की मुख़्तलिफ़ चीज़ें दाई के अंदर रुकुन (दावत से दूरी) का ज़ेहन पैदा करती हैं, लेकिन पैग़ंबर को सख़्ती के साथ हुक्म था कि वह किसी भी दबाव का असर क़ुबूल न करे। वह सख़्ती के साथ दावत के बताए हुए उसूलों पर क़ायम रहते हुए अपना दावती मिशन जारी रखे, वह हालात के असर से झुकाव का शिकार न हो।

दावत के मिशन में इस्तिक़ामत का यह उसूल जिस तरह पैग़ंबर के लिए था, उसी तरह पैग़ंबर की उम्मत के लिए भी है। इस मामले में उम्मत अपने पैग़ंबर की नुमाइंदा है और नुमाइंदे को यह हक़ नहीं होता कि वह इस मामले में किसी भी झुकाव को क़ुबूल करके अस्ल मिशन में किसी क़िस्म की तब्दीली करे। अगर वह तब्दीली करना चाहे तो उसके लिए भी यक़ीनी तौर पर इसी पकड़ का अंदेशा है, जिसका ज़िक्र ऊपर की आयत में पैग़ंबर के लिए किया गया। दावत-ए-इलल्लाह के काम के लिए यह लाज़िमी शर्त है। इस शर्त के बग़ैर दावत-ए-इलल्लाह का काम दुरुस्त तौर पर अंजाम नहीं दिया जा सकता और जब दावत-ए-इलल्लाह का काम दुरुस्त तौर पर अंजाम न दिया जाए तो वह मक़सद अदा नहीं होता, जो दावत-ए-इलल्लाह का मतलूब है यानी क़ौमों पर अल्लाह की हुज्जत अदा नहीं होती। (अन-निसा, 4:165)

दावत-ए-इलल्लाह का काम एक मुख़्तलिफ़ नौइय्यत का काम है। इसमें दूसरे तमाम तक़ाज़ों को अलग रखना पड़ता है। मसलन क़ौमी तक़ाज़े, माद्दी तक़ाज़े, अवामी तक़ाज़े वग़ैरह। इन तक़ाज़ों से बचते हुए दावत का काम करना बिला-शुब्हा एक सख़्त काम है, लेकिन उम्मत को हर हाल में यह करना है कि वह दूसरे तमाम तक़ाज़ों का असर क़ुबूल न करते हुए इस ख़ुदाई मिशन को जारी रखे। यही उम्मत का

इम्तिहान है। इस इम्तिहान में पूरा होना उम्मत-ए-मुहम्मदी को उम्मत-ए-मुहम्मदी बनाता है और अगर उम्मत इस इम्तिहान में नाकाम रहे तो ख़ुद उनका मामला मुश्तबा (doubtful) हो जाएगा कि वह अल्लाह के यहाँ उम्मत-ए-मुहम्मदी की हैसियत से क़ुबूल की जाएगी या नहीं।

दरयाफ़्त की अज़्मत

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के मक्की दौर का वाक़या है। आपके चचा अबू तालिब ने एक बार आपको बुलाया और कहा कि क़ौम के साथ मुसालिहत (compromise) का अंदाज़ इख़्तियार करो। इसके जवाब में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

يَا عَمِّ لَوْ وُضِعَتِ الشَّمْسُ فِي يَمِينِي
وَالْقَمَرُ فِي يَسَارِي مَا تَرَكْتُ الْأَمْر.

"ऐ मेरे चचा, अगर ये लोग ऐसा करें कि वे मेरे दाएँ हाथ में सूरज रख दें और मेरे बाएँ हाथ में चाँद रख दें, तब भी मैं इस काम को नहीं छोड़ूँगा।" (सीरत इब्न इसहाक़, सफ़ा 154)

इस वाक़ये से एक निहायत अहम उसूल मालूम होता है, वह यह कि जितनी बड़ी दरयाफ़्त, उतनी बड़ी अज़ीमत (determination)। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का मज़्कूरा क़ौल भी एक सुन्नत-ए-रसूल है। वह एक वाक़ये की सूरत में एक अज़ीम हक़ीक़त को बताता है, वह यह कि एक बड़ी दरयाफ़्त तमाम दूसरी चीज़ों को छोटा कर देती है। ऐसा आदमी किसी क़िस्म के 'झुकाव' (सूरह हूद, 11:113) का तहम्मुल नहीं कर सकता।

अगर आदमी एक ऐसी हक़ीक़त पर खड़ा हुआ हो, जो उसके लिए

सूरज और चाँद से भी ज़्यादा बड़ी है, तो हर दूसरी चीज़ उसकी नज़र में छोटी हो जाएगी। ऐसा आदमी किसी भी उम्र को लेकर अपनी फ़िक्र के मामले में मुसालिहत का अंदाज़ इख़्तियार नहीं कर सकता। इसके बर-अक्स अगर आप किसी शख़्स के अंदर यह बात पाएँ कि वह क़ौम के अंदर बुराई देखता है, लेकिन वह अपने माद्दी इंटरेस्ट की बिना पर इसकी मज़म्मत नहीं करता, तो समझ लीजिए कि उसे दीन के नाम पर जो चीज़ मिली है, वह उसके नज़दीक अमलन इतनी अहम नहीं कि माद्दी मस्लहत उसके लिए क़ुर्बान कर दी जाए।

आफ़ाक़ी मारिफ़त

क़ुरआन में एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنْفُسِهِمْ حَتَّى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقُّ أَوَلَمْ يَكْفِ بِرَبِّكَ أَنَّهُ عَلَى كُلِّ شَيْءٍ شَهِيدٌ.

"मुस्तक़बिल में हम उन्हें दिखाएँगे अपनी निशानियाँ, आफ़ाक़ में और अन्फ़ुस में, यहाँ तक कि उन पर वाज़ेह हो जाएगा कि यह हक़ है और क्या यह बात काफ़ी नहीं कि तेरा रब हर चीज़ का गवाह है?" (41:53)

क़ुरआन की इस आयत में मुस्तक़बिल में पेश आने वाले एक वाक़ये की ख़बर दी गई है। यह वही चीज़ है, जिसे तारीख़ में 'एज ऑफ़ रीज़न' (age of reason) कहा जाता है यानी क़ुरआन से पहले जो दौर था, वह ऐसा दौर था, जिसमें सुनने और मानने की बुनियाद पर ईमान को क़ुबूल किया जाता था, लेकिन क़ुरआन के बाद वह दौर आने वाला था, जो अक़्ली तर्ज़-ए-फ़िक्र का दौर होगा। इस दौर में रीज़न की बुनियाद पर ईमान को माना जाएगा।

कायनात में ग़ौर-ओ-फ़िक्र करना इस हक़ीक़त को मालूम करने के लिए काफ़ी है कि इस कायनात का एक ख़ालिक़ है। कायनात ख़ालिक़ के लिए अपना सबूत आप है। कायनात में फ़ितरत के जिन हक़ाइक़ को बयान किया गया था, वे बाद के मुताले के ज़रिये ऐन साबित-शुदा हक़ीक़त बन गए हैं।

क़ुरआन की इस आयत में मुस्तक़बिल के एक वाक़ये की पेशगी ख़बर दी गई है। जब यह वाक़या ज़ाहिर होगा, तो क़ुरआन का दावा आख़िरी तौर पर साबित हो जाएगा कि इस कायनात का एक ख़ालिक़ है और इंसान पर लाज़िम है कि वह इस ख़ालिक़ को मानकर दुनिया में अपनी ज़िंदगी गुज़ारे। इस आयत के नुज़ूल के वक़्त यह वाक़या पेश नहीं आया था, वह मुस्तक़बिल में ज़ाहिर होने वाला था। अब सवाल यह है कि मुस्तक़बिल का यह वाक़या कब और कहाँ ज़ाहिर होगा? हमारी तफ़्सीरों में इसका जवाब नहीं मिलता। क़ुरआन के क़ारी पर लाज़िम है कि वह मुस्तक़बिल के इस वाक़ये को दरयाफ़्त करे और इसके मुताबिक़ अपनी ज़िंदगी की तामीर करे।

ग़ौर किया जाए तो मग़रिब में पैदा होने वाली मॉडर्न साइंस इस सवाल का जवाब है। अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा है कि गैलीलियो गैलीली मॉडर्न साइंस का फ़ादर (father of modern science) है यानी इस साइंस का आग़ाज़ करने वाला। साइंस की तारीख़ बताती है कि यह आग़ाज़ गैलीलियो गैलीली (1564-1642) की दरयाफ़्त से हुआ। इससे पहले बतौर वाक़या (potentially) साइंस मौजूद थी, लेकिन अब तक वह इंसान के इल्म में नहीं आई थी। गैलीलियो के ज़माने में साइंस का इल्म डेवलप हुआ। इसके बाद पहली बार दूरबीनी मुताले के ज़रिये इंसान ने 'शम्सी निज़ाम' (solar system) के बारे में मालूमात हासिल की। दूरबीनी मुताले के ज़रिये पहली बार इंसान ने यह जाना कि सूरज सोलर सिस्टम का मरकज़ है। ज़मीन सोलर सिस्टम का मरकज़ नहीं है, जैसा कि पहले समझा जाता था।

हदीस में कहा गया है कि अल्लाह 'फ़ाजिर' (सेक्युलर) इंसान के ज़रिये दीन की मदद करेगा (मुसनद अल-शहाब अल-क़ज़ाई, हदीस नंबर 1096)। मेरे अंदाज़े के मुताबिक़, जदीद दौर में यह सेक्युलर इंसान ग़ालिबन गैलीलियो गैलीली है। गैलीलियो गैलीली ने दूरबीन के ज़रिये निज़ाम-ए-शम्सी का मुताला किया तो यह हक़ीक़त दरयाफ़्त हुई कि शम्सी निज़ाम सूरज मर्कज़ी है, न कि ज़मीन मर्कज़ी। इस दरयाफ़्त के बाद फ़लकियाती इल्म (Astronomical Science) में एक नया इंक़िलाबी दौर आया। ग़ालिबन यह इटली का साइंस-दाँ गैलीलियो गैलीली था, जिसके बाद फ़लकियाती मुशाहिदे का दरवाज़ा खुला।

इसी तरह से ब्रिटिश साइंस-दाँ न्यूटन (1643-1727) के ज़रिये साइंसी मुताले का सफ़र मज़ीद आगे बढ़ा। इस क़िस्म के तमाम साइंस-दाँ ब-ज़ाहिर क़ुरआन की मज़्कूरा आयत की ताईद करते हैं। कायनात का यह तरीक़ा-ए-मुताला जो शुरू हुआ, उसे 'साइंसी मुताला' कहा जाता है। इसके बाद ही वह दौर आया, जिसे 'साइंसी दौर' कहा जाता है। इसी मुताले के ज़रिये आला सतह पर आफ़ाक़ और अन्फ़ुस की निशानियों (दलाइल-ए-इलाही) का इज़्हार हुआ, जिसकी पेशीनगोई क़ुरआन में की गई थी। (सूरह फ़ुसिलत, 41:53)

तारीख़ का मुताला बताता है कि क़ुरआन के नुज़ूल की इब्तिदा ईस्वी कैलेंडर के मुताबिक़ 609 में हुई। तक़रीबन उसी ज़माने में यूरोप में एक और अमल शुरू हुआ, जिसका नुक़्ता-ए-इंतिहा (culmination) यह था कि अंग्रेज़ी ज़बान दुनिया की इंटरनेशनल ज़बान बन जाए और कायनात में बिल-क़ुव्वत मौजूद निशानियाँ साइंसी तहक़ीक़ के ज़रिये सामने आ जाएँ। वाक़यात बताते हैं कि इस आफ़ाक़ी मारिफ़त का ज़ुहूर अमलन वाक़ेअ हो चुका है। अब ज़रूरत सिर्फ़ यह है कि इसे दरयाफ़्त किया जाए और इसे इस्लामी दावत के लिए इस्तेमाल किया जाए।

आलमी इंज़ार

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

بَارَكَ الَّذِي نَزَّلَ الْفُرْقَانَ عَلَى عَبْدِهِ لِيَكُونَ لِلْعَالَمِينَ نَذِيرًا.

"बड़ी बा-बरकत है वह ज़ात, जिसने अपने बंदे पर फ़ुरक़ान उतारा, ताकि वह जहान वालों के लिए आगाह करने वाला हो।" (25:1)

इस मौज़ू पर क़ुरआन की एक और आयत यह है—

وَأُوحِيَ إِلَيَّ هَذَا الْقُرْآنُ لِأُنْذِرَكُمْ بِهِ وَمَنْ بَلَغَ.

"और मेरी तरफ़ यह क़ुरआन वह्य किया गया है कि मैं भी इसके ज़रिये तुम्हें आगाह करूँ और वे भी, जिनको यह पहुँचे।" (6:19)

क़ुरआन की इन दोनों आयतों का मुताला करने से मालूम होता है कि क़ुरआन इसलिए उतरा था कि वह अहले-आलम के लिए नज़ीर बने यानी आगाह करने वाला। रसूल और अस्हाब-ए-रसूल ने क़ुरआन के ज़माना-ए-नुज़ूल में बराहे-रास्त तौर पर क़ुरआन को अपने ज़माने के लोगों तक पहुँचाया। इसके बाद दूसरा मतलूब यह था कि रसूल और अस्हाब-ए-रसूल के बाद के अहले-ईमान आने वाली नस्लों तक क़ुरआन की तालीमात को पहुँचाएँ।

तारीख़ का मुताला बताता है कि रसूल और अस्हाब-ए-रसूल के ज़माने में प्रिंटिंग प्रेस और इशाअत (publication) के आलमी ज़राए वजूद में नहीं आए थे। इसलिए उन्होंने लोगों तक क़ुरआन को इस तरह पहुँचाया कि क़ुरआन को हाफ़िज़े (memory) में महफ़ूज़ कर लिया और अहले-अरब तक वे इसे पढ़कर पहुँचाते रहे। गोया कि वे अपने

ज़माने के अरबी-दाँ लोगों के लिए क़ुरआन के मुक़री (reciter) बने रहे, मगर बाद के ज़माने में इंज़ार का यह प्रोसेस अमलन रुक गया।

अब सवाल यह है कि बाद के ज़माने के हालात का इल्म अल्लाह रब्बुल आलमीन को बिला-शुब्हा था। फिर अल्लाह रब्बुल आलमीन ने इसके लिए क्या इंतिज़ाम किया? इस सवाल का जवाब हदीस से मालूम होता है। हदीस-ए-रसूल का मुताला करने से मालूम होता है कि हदीस में पेशीनगोई के तौर पर यह बताया गया था कि बाद के ज़माने में ग़ैर-अहले-ईमान में दीन के मौईदीन (supporters) पैदा होंगे। यह पेशीनगोई हदीस की मुख़्तलिफ़ किताबों में आई है। एक रिवायत के अल्फ़ाज़ ये हैं—

إِنَّ اللهَ عَزَّ وَجَلَّ لَيُؤَيِّدُ الْإِسْلَامَ بِرِجَالٍ مَا هُمْ مِنْ أَهْلِهِ.

"अल्लाह तआला ज़रूर इस्लाम की ताईद ऐसे लोगों से करेगा, जो अहले-इस्लाम में से न होंगे।"

(अल-मोजम अल-कबीर लिल-तबरानी, हदीस नंबर 14,640)

मज़ीद मुताले के ज़रिये यह मालूम होता है कि ये वह सपोर्टर थे, जिन्होंने बाद के ज़माने में प्रिंटिंग प्रेस और काग़ज़ जैसी चीज़ें ईजाद कीं। उन्होंने ऐसी टेक्नोलॉजी दरयाफ़्त की, जिसके ज़रिये यह हुआ कि दुनिया में एक नया दौर आ गया, जिसे 'एज ऑफ़ कम्यूनीकेशन' (age of communication) कहा जाता है।

इस मामले में क़ुरआन के साथ हदीस-ए-रसूल को शामिल करके मुताला किया जाए तो मालूम होता है कि बाद के ज़माने के लोगों ने साथ देने का वह काम अंजाम दिया, जिसकी पेशीनगोई हदीस में की गई थी। अब अहले-ईमान का यह काम था कि वे ग़ैर-अहले-दीन की इस मदद को दरयाफ़्त करें और उसे आलमी सतह पर इंसानों को ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से बा-ख़बर करने के लिए इस्तेमाल करें यानी बाद के अहले-ईमान को यह करना था कि वे क़ुरआन के महफ़ूज़

अरबी मतन का क़ाबिल-ए-फ़हम तर्जुमा हर ज़बान में तैयार करें और बाद के पैदा-शुदा ज़राए, प्रिंटिंग प्रेस और कम्युनिकेशन को इस्तेमाल करके क़ुरआन को लोगों की क़ाबिल-ए-फ़हम ज़बान में सारी दुनिया में पहुँचाएँ। दूसरे लफ़्ज़ों में यह कि दौर-ए-अव्वल के अहले-ईमान क़ुरआन को पहुँचाने के लिए मुक़री (reciter) बने थे, तो बाद के अहले-ईमान क़ुरआन के तर्जुमों के आलमी डिस्ट्रीब्यूटर बन जाएँ।

यह अल्लाह रब्बुल आलमीन की प्लानिंग थी। जिस तरह खेती के लिए पहले आसमान से बारिश होती है, इसके बाद किसान इस पानी को इस्तेमाल करके मिट्टी पर फ़सल बोने का अमल करता है, वह अनाज उगाता है और फिर तमाम इंसानों को ग़िज़ा फ़राहम होती है। इसी तरह बाद के अहले-ईमान को यह करना है कि जब दुनिया में कम्युनिकेशन का ज़माना (age of communication) आए, तो वे हदीस-ए-रसूल की पेशीनगोई को इसके अमल करने के एतिबार से पढ़ें और अल्लाह रब्बुल आलमीन की प्लानिंग को समझकर आगे बढ़ें। वे 'एज ऑफ़ कम्युनिकेशन' को भरपूर तौर पर इस्तेमाल करें और अल्लाह के पैग़ाम को सारी दुनिया में पहुँचा दें। अब आख़िर वक़्त आ गया है कि इस मंसूबे को मुकम्मल किया जाए और जदीद ज़राए को इस्तेमाल करके लोगों की क़ाबिल-ए-फ़हम ज़बान में क़ुरआन को आलमी सतह पर पहुँचा दिया जाए।

टीम स्पिरिट

क़ुरआन का एक उस्लूब है— वक़्ती रेफ़रेंस में एक अबदी उसूल बताना। इसकी एक मिसाल क़ुरआन की यह आयत है—

إِنَّ اللَّهَ يُحِبُّ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَ فِي سَبِيلِهِ صَفًّا كَأَنَّهُمْ بُنْيَانٌ مَرْصُوصٌ.

"ख़ुदा उन लोगों को पसंद करता है, जो उसके रास्ते में इस तरह मिलकर लड़ते हैं गोया वे एक सीसा पिलाई हुई दीवार हैं।" (61:4)

क़ुरआन की इस आयत में क़िताल की बात वक़्ती रेफ़रेंस के तौर पर है। हक़ीक़त यह है कि इस आयत में एक अबदी उसूल को बताया गया है। वह उसूल यह है कि इस दुनिया में कोई नतीजाख़ेज़ इज्तिमाई काम अंजाम देने के लिए हमेशा टीम स्पिरिट की ज़रूरत होती है यानी ऐसे अफ़राद, जो कामिल इत्तिहाद के साथ काम करें। इत्तिहाद का मतलब यह नहीं है कि उनके दरमियान कोई इख़्तिलाफ़ न हो, इसलिए वे बाहम मुत्तहिद हो जाएँ। हक़ीक़त यह है कि इख़्तिलाफ़ फ़ितरत का लाज़िमी हिस्सा है। इसलिए टीम स्पिरिट वाला इत्तिहाद सिर्फ़ उन लोगों के दरमियान वुक़ू में आता है, जो इख़्तिलाफ़ के बावजूद मुत्तहिद होना जानते हों।

कोई टीम ख़्वाह वह कितनी ही ज़्यादा मेयारी टीम हो, लेकिन टीम के अफ़राद में इख़्तिलाफ़ का पैदा होना एक फ़ितरी अम्र है। इस दुनिया में हर टीम ज़िंदा इंसानों की टीम होती है, वह मशीनी रोबोट की टीम नहीं होती। अगर मशीनी रोबोट की टीम बनाई जाए तो उसके अंदर कभी इख़्तिलाफ़ वाक़ेअ नहीं होगा, लेकिन ज़िंदा इंसानों की टीम में इख़्तिलाफ़ का पैदा होना ज़रूरी है। ऐसी हालत में अस्ल ज़रूरत यह नहीं है कि लोगों के दरमियान इख़्तिलाफ़ पैदा न हो, बल्कि अस्ल ज़रूरत यह है कि लोग इख़्तिलाफ़ के बावजूद मुत्तहिद होकर रहना जानते हों।

इख़्तिलाफ़ अपनी ज़ात में कोई बुरी चीज़ नहीं, बल्कि वह सेहतमंद इंसान की अलामत है। इंसान को चाहिए कि वह इख़्तिलाफ़ से ना-मुवाफ़िक़ असर न ले, बल्कि वह इख़्तिलाफ़ को मुस्बत अंदाज़ में मैनेज करना जानता हो। इख़्तिलाफ़ से मनफ़ी असर लेना मामले को

बिगाड़ता है। इसके मुक़ाबले में इख़्तिलाफ़ को मुस्बत अंदाज़ में मैनेज करना टीम की ताक़त का ज़रिया है।

उम्मत का ज़वाल

मौजूदा ज़माने में उम्मत के ज़वाल का असल सबब यह है कि क़ुरआन-ओ-हदीस उनके लिए ग़ैर-रहनुमा किताब बन गई है। आज के मुसलमानों के लिए क़ुरआन बस एक मुक़द्दस किताब है और जहाँ तक हदीस का सवाल है, हदीस उनके लिए फ़िक़्ही मसाइल का माख़ज़ है। मुसलमानों के तमाम मसाइल का अस्ल सबब यही है।

क़ुरआन में कई मक़ामात पर बताया गया है कि रसूल को ख़ुदा ने किताब और हिकमत के साथ भेजा है। ये दोनों मुसलमानों के लिए अबदी रहनुमाई का ज़रिया थीं, लेकिन मुसलमानों ने अपने दौर-ए-ज़वाल में इन दोनों को अपने लिए रहनुमा बनाने के बजाय बरकत और फ़िक़्ही अहकाम का ज़रिया समझ लिया। इस मामले में मुसलमानों का हाल वही हुआ, जो रसूलुल्लाह ने पेशगी तौर पर आगाह कर दिया था—

تَرَكْتُ فِيكُمْ أَمْرَيْنِ، لَنْ تَضِلُّوا مَا تَمَسَّكْتُمْ بِهِمَا: كِتَابَ اللهِ وَسُنَّةَ نَبِيِّهِ.

“रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— मैंने तुम्हारे दरमियान दो चीज़ें छोड़ी हैं, तुम हरगिज़ गुमराह न होगे, जब तक तुम इन दोनों चीज़ों को पकड़े रहोगे। वे दो चीज़ें हैं— अल्लाह की किताब और उसके रसूल की सुन्नत।”

(मुवत्ता इमाम मालिक, हदीस नंबर 1,874)

बाद के ज़माने में जब मुसलमानों ने किताब-ओ-सुन्नत को तर्क कर दिया तो उसके बाद जो हुआ, वह यह था कि मुसलमान हक़ीक़ी ख़ुदाई रहनुमाई से महरूम हो गए। इसका नतीजा यह हुआ कि मुसलमान अँधेरों में भटककर 'सिरातुल मुस्तक़ीम' से डीरेल (derail) हो गए। उनका सफ़र मतलूब रास्ते पर होने के बजाय ग़ैर-मतलूब रास्ते पर होने लगा। मतलूब रास्ता था— मसलन ख़ुदा की मारिफ़त और दावत, मगर मुसलमान इस रास्ते से हटकर दुनियावी मसाइल में लग गए और दावत के बजाय मदऊ को अपना दुश्मन क़रार दे दिया। मामला यहाँ तक पहुँचा कि मुसलमान अपने दुनियावी मफ़ाद के लिए इस्लाम को इस्तेमाल करने लगे। मसलन 'अलैहदा मुस्लिम लैंड' (Separate Muslim Land) की लड़ाई को इस्लाम और ईमान के लिए जिहाद करना क़रार दे दिया। यही वह हक़ीक़त है, जिसे मज़्कूरा हदीस में गुमराही कहा गया है।

ज़वाल का ज़ाहिरा

मोमिन कौन है? क़ुरआन के मुताबिक़, मोमिन वह है, जिसका यह हाल हो कि जब उसके सामने अल्लाह का ज़िक्र किया जाए तो उसकी हैबत से बंदा-ए-मोमिन का दिल दहल उठे। जब उसे क़ुरआन की आयतें सुनाई जाएँ तो उसे इज़ाफ़ा-ए-ईमान की ग़िज़ा मिलने लगे। उसके लिए ख़ुदा एक ऐसी ला-ज़वाल हस्ती बन जाए, जिस पर वह कामिल भरोसा कर सकता हो (8:2)। ईमान ख़ुदा और बंदे के दरमियान कनेक्शन का ज़रिया है। इस कनेक्शन का हक़ीक़ी तौर पर ज़हूर में आना ही इन कैफ़ियात के ज़हूर में आने की यक़ीनी ज़मानत है। पावर हाउस और बल्ब का मिलाप अगर नतीजा पैदा किए बग़ैर नहीं रहता, तो ख़ुदा और बंदे का मिलाप क्योंकर नतीजे से ख़ाली रह जाएगा।

मौजूदा ज़माने में इस्लाम की ऐसी अजीबो-ग़रीब क़िस्म वजूद में आई है, जिसमें सब कुछ नज़र आता है, मगर वही चीज़ नहीं, जिसे हक़ीक़तन 'इस्लाम' कहा गया है। हमारे ज़माने के अजाइब में यह अजूबा सबसे ज़्यादा हैरतनाक है कि हर तरफ़ इस्लाम की धूम मची हुई है, मगर हक़ीक़ी इस्लाम का कहीं वजूद नहीं। नमाज़ियों की तादाद बढ़ रही है, मगर 'सलात-ए-ख़ुशू' से मस्जिदें ख़ाली हैं। इस्लामी मदरसों की इमारतें बुलंद हो रही हैं, मगर वे लोग नहीं पैदा हो रहे हैं, जो अपनी ज़िंदगियों में भी इस्लाम की तामीर की ज़रूरत महसूस करते हों। इस्लाम के नारों से फ़ज़ाएँ गूँज रही हैं, मगर उस इस्लाम का वजूद नहीं, जो तन्हाइयों में आदमी को ख़ुदा की याद में बेचैन कर दे। दूसरों की पीठ पर इस्लाम के नाम पर कोड़े लग रहे हैं, मगर अपनी 'पीठ' को ख़ुदा के हवाले करने वाला कोई नहीं। इस्लामी तक़रीरों की बहार आ रही है, मगर ख़ुदा की ज़मीन ऐसे लोगों से ख़ाली है, जिन्हें ख़ुदा के ख़ौफ़ ने बे-ज़बान कर रखा हो। कायनात के जायज़े (accountability of the universe) के हंगामे हर तरफ़ बरपा हैं, मगर अपने जायज़े (self-accountability) की ज़रूरत किसी को महसूस नहीं होती।

इसकी वजह यह है कि इस्लाम के जिस्म से उसकी रूह निकाल दी गई है और ख़ुद-साख़्ता तौर पर इस्लाम का ऐसा एडिशन तैयार कर लिया गया है, जो ब-ज़ाहिर इस्लाम है, मगर वही चीज़ इसमें मौजूद नहीं, जो ख़ुदा और रसूल के नज़दीक इस्लाम का अस्ल मक़सूद थी।

इसे समझने के लिए यहूद की तारीख़ का मुताला कीजिए, क्योंकि जो क़ौमें किताब-ए-इलाही की हामिल हों, उनके बिगाड़ के अस्बाब हमेशा यकसाँ होते हैं। यहूद की बाबत क़ुरआन में कहा गया है कि बाद के दौर में उनके अंदर 'क़सावत' (hardness of heart) आ गई (2:74)। क़सावत की हालत यह नहीं है कि दीन अपनी सूरत के एतिबार से बाक़ी न रहे। ऐसा कभी नहीं होता। दीन की सूरतें हमेशा

मुकम्मल तौर पर बाक़ी रहती हैं, अलबत्ता क़ौम के अंदर से उनकी रूह निकल जाती है। क़ुरआन के मुताबिक़, क़सावत दरअसल 'ज़िक्र' और 'ख़शीय्यत' के ख़ात्मे का नाम है (39:22-23), न कि ज़वाहिर-ए-दीन के ख़ात्मे का।

क़ौम के अंदर यह बिगाड़ इनकार-ए-दीन के नाम पर नहीं आता, बल्कि इक़रार-ए-दीन के साथ आता है। क़ुरआन के बयान के मुताबिक़, शैतान उन्हें ऐसे-ऐसे मतलब समझाता है, जिसकी रोशनी में उन्हें अपना भटकाव हक़ीक़ी दीन नज़र आने लगे और हक़ीक़ी दीन बे-दीनी। वे अपने आमाल को ख़ूबसूरत अल्फ़ाज़ में बयान करके उसे अपने लिए जायज़ बना लेते हैं (सूरह फ़ातिर, 35:8)। इस ख़ुश-नुमाई (adornment) की सबसे ज़्यादा मारूफ़ सूरत वह है, जिसे क़ुरआन में 'तहरीफ़' बताया गया है (5:13) यानी असल बात को तब्दील कर देना। कलाम को उसके महल से फेरने का मतलब यह है कि कलाम का ऐसा मतलब व मआनी बयान किया जाए, जो कहने वाले की मुराद न हो। गोया यहूद की गुमराही यह थी कि वे अपनी ज़ाहिरी (बे-रूह) दीन-दारी को ख़ूबसूरत अल्फाज़ से ऐसा ख़ुशनुमा बना लेते थे कि वही अस्ल दीन नज़र आने लगे।

तहरीफ़ की सूरत आम तौर पर वही होती है, जिसे मौजूदा ज़माने में 'ग़लत ताबीर' (misinterpretation) कहा जाता है। इस मामले को समझने के लिए एक मिसाल लीजिए। यहूद को यह ख़बर दी गई थी कि तुम्हें पूरे आलम पर फ़ज़ीलत दी गई है (अल-बक़रह, 2:47)। इसका मतलब यह था कि अल्लाह ने तुम्हें दुनिया में अपनी नुमाइंदगी के लिए चुन लिया है यानी तुम्हें उस मक़ाम पर खड़ा किया है कि तुम ख़ुदाई तालीमात के हामिल बनो और इसे ख़ुदा की तरफ़ से दूसरी अक़्वाम तक पहुँचाओ। अपने असल मफ़्हूम में यह फ़ज़ीलत ज़िम्मेदारी थी, मगर यहूद ने इसे नस्ली फ़ज़ीलत के मआनों में ले लिया। यहूद की नस्ल

में पैदा होना इस बात के लिए काफ़ी बन गया कि आदमी इस फ़ज़ीलत का मुस्तहिक़ हो और ख़ुदा के इनामात उसे हासिल हों। इस तहरीफ़ को क़ुरआन में इन अल्फ़ाज़ में वाज़ेह किया गया है—

> "वे कहते हैं कि यहूदी या नसरानी हो जाओ तो हिदायतयाब हो जाओगे। कह दो कि नहीं, बल्कि हम पैरवी करते हैं दीन-ए-इब्राहीम की और वह शिर्क करने वालों में न था।" (2:135)

गोया मिल्लत-ए-इब्राहिमी का फ़र्द वह है, जो शिर्क से अपने आपको बचाए और सच्ची तौहीद पर क़ायम हो। महज़ नस्ल-ए-इब्राहिमी में होने से कोई मिल्लत-ए-इब्राहिमी का फ़र्द नहीं बन जाता। यहूद को जो 'फ़ज़ीलत' दी गई, वह अपने अस्ल मफ़्हूम में एक संगीन ज़िम्मेदारी को याद दिलाने वाली चीज़ थी, मगर मौक़ा व महल से हटाने के बाद वह बे-ख़ौफ़ी का मुहर्रिक बन गई। अल्लाह का एक हुक्म, जो ख़ौफ़ पैदा करने का सबब बनता, वह सख़्त-दिली पैदा करने वाला बन गया। यह थी यहूद की तहरीफ़। अपनी इस क़िस्म की तहरीफ़ों के ज़रिये उन्होंने दीन-ए-ख़ुदावंदी को एक बे-रूह ढाँचा बनाकर रख दिया था।

हदीस-ए-रसूल में पेशीनगोई की गई है कि मुसलमान ज़रूर पिछली उम्मतों के तरीक़ों की पैरवी करेंगे। क़दम-ब-क़दम, यहाँ तक कि अगर वे किसी गोह के बिल में दाख़िल होंगे तो यह उम्मत भी वहाँ दाख़िल हो जाएगी (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7,320)। चुनाँचे मुसलमानों में आज वे सारे इनहिराफ़ देखे जा सकते हैं, जो साबिक़ अहले-किताब में पाए जाते थे। जिस तरह यहूद ने समझ लिया था कि वे अल्लाह के ख़ुसूसी बंदे हैं और वे ज़रूर नजात पाएँगे, उसी तरह हमने भी यह अक़ीदा क़ायम कर लिया कि मुसलमान ख़ैर-ए-उम्मत हैं और वे सब-के-सब ख़ुद-ब-ख़ुद रहमत के साये में हैं और बख़्शे हुए हैं।

यह बात बजाय ख़ुद सद-फ़ीसद दुरुस्त है, मगर वह मुस्लिम उम्मत के बारे में है, न कि किसी मुस्लिम नस्ल के बारे में। उम्मत को नस्ल के मअनों में लेना बिला-शुब्हा क़ुरआन के मुताबिक़ 'तहरीफ़' (4:46) है यानी कलाम को उसके अस्ल मंशा से बदल देना। अपने नज़रियाती मफ़्हूम में यह बात ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाती है, मगर जब उसे नस्ली मफ़्हूम में लिया गया तो वह सिर्फ़ क़ल्बी क़सावत और बेख़ौफ़ी का मुहर्रिक बनकर रह गई। इस्लाम का निशाना यह है कि वह इंसान को तर्बियत देकर इस क़ाबिल बनाए कि वह अपनी 'ज़ाती फ़िक्र' (self-thinking) के ज़रिये अपने अंदर मतलूब रब्बानी शख़्सियत की तामीर करे।

तीन दौर

इंसान की ज़िंदगी तीन दौर में बँटी हुई है— बचपन, जवानी और बुढ़ापा। बचपन में आदमी ख़ुद इस क़ाबिल नहीं होता कि अपने मुस्तक़बिल की प्लानिंग करे। माँ-बाप अकसर लाड़-प्यार में बचपन के दौर को ज़ाए कर देते हैं। ख़ालिक़ इंसानों को पैदा कर रहा है, ताकि वे ज़िंदगी में कोई रोल अदा करें, मगर सही प्लानिंग न होने की वजह से बेशतर लोग अपनी ज़िंदगी के इमकान को अवेल (avail) नहीं कर पाते। वे ना-मुकम्मल ज़िंदगी गुज़ारकर मर जाते हैं।

ज़िंदगी रब्बुल आलमीन की तरफ़ से एक क़ीमती तोहफ़ा है। आदमी को चाहिए कि वह इस तोहफ़े का भरपूर तौर पर इस्तेमाल करे। वह इससे अपने आपको बचाए कि वह रब्बुल आलमीन की तरफ़ से आई हुई ज़िंदगी को खो दे। इंसान जब ज़िंदगी को वजूद में नहीं ला सकता, तो उसे हक़ भी नहीं कि वह मिली हुई ज़िंदगी को ज़ाए कर दे।

अस्ल बात यह है कि हर इंसान को मौजूदा दौर-ए-हयात में भरपूर तौर पर यह मौक़ा हासिल होता है कि दुरुस्त प्लानिंग के ज़रिये वह अपने आपको मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़ कामयाब कर सके। उसकी ज़िंदगी वाक़यात से भरी हुई है। हर इंसान की ज़िंदगी में ऐसे तजुर्बात होते हैं, जो दूसरे इंसान की ज़िंदगी में नहीं होते हैं। गोया हर इंसान अपने साथ एक पूरी लाइब्रेरी लिये हुए है। हक़ीक़त के एतिबार से ज़िंदगी की यह लाइब्रेरी टेस्ट का पेपर है। इसके ज़रिये इंसान को अपने लिए अबदी कामयाबी लिखनी है या अबदी नाकामी।

क़यामत वह दिन है, जबकि हर इंसान की लिखी या बग़ैर लिखी किताबें खुलकर सामने आ जाएँगी। उस वक़्त हर इंसान यह जान लेगा कि उसने अपनी ज़िंदगी में क्या खोया और क्या पाया। उसने किस मौक़े को अवेल किया और किस मौक़े को ज़ाए कर दिया। इस सूरतेहाल का सबसे ज़्यादा संगीन पहलू यह होगा कि कोई भी इंसान इस पोज़ीशन में न होगा कि वह अपनी ज़िंदगी की कहानी को 'री-राइट' (re-write) करे। कामयाब इंसान वह है, जो ज़िंदगी की इस नौइय्यत को समझे और इसके मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारे।

तमाम मसाइल का हल

कुछ लोग यह कहते हैं कि क़ुरआन इंसानी ज़िंदगी के तमाम मसाइल हल करता है। मैंने इस तरह की बहुत-सी तहरीरें पढ़ी हैं और तक़रीरें सुनी हैं, लेकिन इन हज़रात की तक़रीरों और तहरीरों में आज तक उसका कोई मुतय्यन हवाला नहीं मिला। उनके अकाबिर-ओ-असाग़िर ने कभी यह नहीं बताया कि यह तसव्वुर क़ुरआन की किस आयत से माख़ूज़ है। अपनी हक़ीक़त के एतिबार से यह सिर्फ़ दावा है, न कि दलील। इसी तरह उन लोगों ने कभी यह नहीं बताया कि दुनिया

के वे कौन से लोग हैं, जिन्होंने अपने मसाइल-ए-दुनियावी को क़ुरआन के ज़रिये हल किया हो। कम-से-कम मेरे इल्म में ऐसी कोई मिसाल मौजूद नहीं।

मेरी मुलाक़ात एक बार मिस्र के एक प्रोफ़ेसर से हुई। वे 'अल-इख़्वानुल मुस्लिमून' के सरगर्म फ़र्द थे। उनसे मैंने पूछा कि 'अल-इख़्वानुल मुस्लिमून' के मशहूर फ़र्द सय्यद क़ुतुब की किताब 'अल-अदालतुल इज्तिमाइय्यतु फ़िल-इस्लाम' (Social Justice in Islam) मैंने पढ़ी है। इसमें सोशल जस्टिस का कोई ढाँचा (well-structured system) नहीं बताया गया है। वे अरबी और अंग्रेज़ी दोनों ज़बानें जानते थे। उनसे देर तक गुफ़्तुगू हुई, लेकिन उन्होंने एतिराफ़ किया कि उस किताब में कोई वेल स्ट्रक्चर्ड सिस्टम वाक़यतन मौजूद नहीं। उन्होंने मेरे इस इज़्हार की ताईद की कि किताब में कुछ इनफ़िरादी वाक़यात को लेकर उन्हें इज्तिमाई निज़ाम के हम-मआनी बना दिया गया है।

हक़ीक़त यह है कि यह बयान बजा-ए-ख़ुद ख़िलाफ़-ए-वाक़या है कि क़ुरआन में दुनियावी मसाइल का हल मौजूद है। क़ुरआन 'हयात-ए-आख़िरत' के लिए एक रहनुमा किताब है। क़ुरआन बताता है कि मौजूदा दुनिया इंसान के लिए 'दारुल इम्तिहान' है। क़ुरआन बताता है कि मौजूदा दुनिया में इंसान किस तरह ज़िंदगी गुज़ारे कि वह आख़िरत की दुनिया में फ़लाह-याफ़्ता ज़िंदगी का मालिक बन जाए। क़ुरआन के मुताबिक़, मौजूदा दुनिया 'दारुल इम्तिहान' है और आख़िरत की दुनिया 'दारुल फ़लाह'। यह मुसलमानों का ख़ुद-साख़्ता तरीक़ा है कि वे फ़लाह-ए-दुनिया का इदारा क़ायम करते हैं और इसका इस्लामी नाम रख देते हैं।

मज़हबी रवादारी, तालीफ़-ए-क़ल्ब

आजकल तालीफ़-ए-क़ल्ब और मज़हबी रवादारी का बहुत ज़्यादा चर्चा है। मेरा सवाल यह है कि मज़हबी रवादारी और तालीफ़-ए-क़ल्ब एक हैं या दोनों में कोई फ़र्क़ है। (सय्यद इक़बाल अहमद उमरी, उमराबाद, तमिलनाडु)

जहाँ तक मैं समझता हूँ कि रवादारी (tolerance) और तालीफ़-ए-क़ल्ब अपनी हक़ीक़त के एतिबार से दोनों एक हैं, अलबत्ता रवादारी एक सेक्युलर इस्तिलाह (term) है और तालीफ़-ए-क़ल्ब एक मज़हबी इस्तिलाह। ताहम दोनों में एक फ़र्क़ है। रवादारी का लफ़्ज़ सिर्फ़ समाजी टॉलरेंस का मफ़्हूम रखता है, जबकि तालीफ़-ए-क़ल्ब (softening of the heart) यक-तरफ़ा ख़ैर-ख़्वाही के उसूल पर क़ायम है। तालीफ़-ए-क़ल्ब मज़हबी मामलात में रवादारी का नाम है। इसके बर-अक्स रवादारी ज़्यादा आम है। रवादारी का मतलब है— ऐसे तर्ज़-ए-अमल, एतिक़ाद और ख़यालात वग़ैरह को गवारा करना, जिनसे आपको इत्तिफ़ाक़ न हो या जो आपके नज़दीक क़ाबिल-ए-क़ुबूल न हों। इसका ताल्लुक़ ज़िंदगी के हर मामले से है, ख़्वाह वह किसी भी शोबे से ताल्लुक़ रखता हो।

रवादारी का तरीक़ा मिज़ाज की बुनियाद पर क़ायम होता है, वह क़ानून के ज़ोर पर क़ायम नहीं होता। यह दरअसल अपनी हक़ीक़त के एतिबार से समाजी अख़्लाक़ियत का मामला है। इसका मक़सद यह है कि हर एक को मुकम्मल आज़ादी हासिल हो, ताकि वह आज़ादी के साथ अपने रवैये का इंतिख़ाब कर सके।

इस मामले में सेहतमंद तरीक़ा यह है कि हर एक आज़ादाना तौर पर अपनी राय का इज़्हार करे और इसी के साथ वह दिल से इस पर

राज़ी हो कि दूसरे को भी यह हक़ है कि वह जिस राय को भी दुरुस्त समझता है, उसे वह आज़ादाना तौर पर ज़ाहिर करे। सेहतमंद रवादारी यह है कि किसी फ़रीक़ पर किसी क़िस्म का दबाव न डाला जाए। हर एक 'जियो और जीने दो' (live and let live) के उसूल पर क़ायम रहे। हर एक का मिज़ाज यह हो कि वह जिस चीज़ को अपना हक़ समझता है, वही हक़ वह दूसरों को भी दे। अदना दर्जे में भी किसी के साथ ना-इंसाफ़ी का सुलूक न किया जाए।

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कातुल मसाबीह

29

मुआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं— "मैंने कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल! मुझे कोई ऐसा अमल बताइए, जो मुझे जन्नत से क़रीब कर दे और मुझे जहन्नम से दूर कर दे।" आपने फ़रमाया— "तुमने बहुत बड़ी बात पूछी है, अलबत्ता वह आसान है, जिसके लिए ख़ुदा उसे आसान कर दे। तुम अल्लाह की इबादत करो, उसके साथ किसी चीज़ को शरीक न ठहराओ, नमाज़ क़ायम करो, ज़कात अदा करो, रमज़ान के रोज़े रखो और बैतुल्लाह का हज करो।" फिर आपने फ़रमाया— "क्या मैं तुम्हें ख़ैर के दरवाज़े न बताऊँ? रोज़े ढाल हैं और सदक़ा गुनाह को बुझाता है, जिस तरह पानी आग को बुझाता है और आदमी का रात के वक़्त नमाज़ पढ़ना।" फिर आपने क़ुरआन की (दो) आयतें तिलावत कीं— "उनके पहलू बिस्तरों से अलग रहते हैं। वे अपने रब को पुकारते हैं— डर से और उम्मीद से और जो कुछ हमने उन्हें दिया है, वे उसमें से ख़र्च करते हैं। किसी को ख़बर नहीं कि इन लोगों के लिए उनके आमाल

के सिला में आँखों की क्या ठंडक छुपाकर रखी गई है (32:16-17)।" फिर आपने फ़रमाया— "क्या मैं तुम्हें न बताऊँ तमाम चीज़ों का सिरा और इसका सतून और इसकी चोटी?" मैंने कहा— "हाँ, ऐ ख़ुदा के रसूल!" आपने फ़रमाया— "मामले का सिरा इस्लाम है और इसका सतून नमाज़ है और इसकी चोटी जिहाद है।" फिर आपने फ़रमाया— "क्या मैं तुम्हें इन सबकी अस्ल न बता दूँ?" मैंने कहा— "हाँ, ऐ ख़ुदा के रसूल!" फिर आपने अपनी ज़बान पकड़ी और कहा— "इससे अपने आपको रोको।" मैंने कहा— "क्या हम पकड़े जाएँगे उस पर, जो हम बोलते हैं?" आपने फ़रमाया— "ऐ मुआज़! लोगों को जहन्नम में, औंधे मुँह, उनकी ज़बान से निकला हुआ बेफ़ायदा कलाम ही गिराएगा।" (सुनन अत-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2,616; सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 3,973; मुसनद अहमद, हदीस नंबर 10,164)

ज़बान को आपने क्यों इतना ज़्यादा अहमियत दी? ज़बान आदमी के पूरे वजूद का ख़ुलासा है, इसलिए आदमी को चाहिए कि वह ज़बान की हिफ़ाज़त का आख़िरी हद तक एहतिमाम करे। ज़बान आदमी की अंदरूनी शख़्सियत का नुमाइंदा है। जो आदमी ग़ैर-ज़िम्मेदाराना अंदाज़ में कलाम करे और बे-रोक-टोक अपनी ज़बान को दूसरों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करे, वह अपने इस अमल से इस बात का सबूत देता है कि उसके अंदर एक ऐसी शख़्सियत छिपी हुई है, जो अल्लाह के ख़ौफ़ और आख़िरत के अंदेशे से ख़ाली है। ऐसा इंसान हर दूसरी ग़लती को करने के लिए भी बे-ख़ौफ़ रहेगा।

इसके बर-अक्स जो आदमी अपनी ज़बान के इस्तेमाल में मोहतात हो और जो अपनी ज़बान से भलाई और इंसाफ़ की बात बोले, ऐसा आदमी अपने इस अमल से बताता है कि वह एक नेक इंसान है। वह अपने आपको ख़ुदा की मातहती में दिए हुए है। वह अपने आपको ख़ुदा के हुक्म का पाबंद बनाए हुए है। ज़बान इंसानी

शख़्सियत की अलामत है। जो आदमी ज़बान के इस्तेमाल के मामले में ख़ुदा की मर्ज़ी का पाबंद हो, वह अपनी ज़िंदगी के दूसरे मामलात में भी यक़ीनी तौर पर ख़ुदा की मर्ज़ी का पाबंद होगा। वह हर मामले में ख़ुदा का मतलूब बंदा बना हुआ होगा।

30

अबू उमामा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "जिसने अल्लाह के लिए मोहब्बत की और अल्लाह के लिए नापसंद किया और उसने अल्लाह के लिए दिया और अल्लाह के लिए रोका तो उसने ईमान कामिल कर लिया।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4,681) तिर्मिज़ी ने इस हदीस को थोड़ी तब्दीली के साथ मुआज़ बिन अनस से नक़ल किया है। इसके आख़िर में ये अल्फ़ाज़ हैं— "उस आदमी ने अपना ईमान कामिल कर लिया।" (सुनन अत-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2,521)

ईमान का आग़ाज़ ख़ुदाई हक़ीक़तों के एतिराफ़ से होता है। यह एतिराफ़ अगर सच्चा है, तो उसके लाज़िमी नतीजे के तौर पर आदमी की ज़िंदगी में इंक़िलाब आ जाता है। उसकी पसंद और नापसंद पर ख़ुदा का रंग छा जाता है (अल-बक़रह, 2:138)। उसके ताल्लुक़ात और उसके लेन-देन ख़ुदाई अहकाम के ताबे हो जाते हैं। आदमी की पसंद और नापसंद या उसके देने या न देने पर ईमान का असर जितना कम होगा, उतना ही उसका ईमान ना-मुकम्मल समझा जाएगा।

ईमान के मामले में अस्ल मतलूब चीज़ हक़ की पैरवी है। मोमिन वह है, जो हक़ को शऊरी तौर पर दरयाफ़्त करे और फिर अमलन इस पर क़ायम हो जाए, मगर यह फ़ैसला कोई सादा फ़ैसला नहीं। जब एक शख़्स हक़ की पैरवी करने का फ़ैसला करता है, तो यह फ़ैसला एक ऐसी दुनिया में होता है, जहाँ तरह-तरह के मसाइल हैं। कभी कोई

चीज़ उसकी ख़्वाहिश (desire) या उसकी अना (ego) को भड़काती है और इसका अंदेशा पैदा हो जाता है कि वह अपनी ख़्वाहिश से मुतास्सिर होकर हक़ के रास्ते से हट जाए। इसी तरह कभी मुश्किलात से उसके इरादे में कमज़ोरी पैदा हो जाती है और ज़रूरत होती है कि उसे दोबारा साबित-क़दमी पर आमादा किया जाए। ईमान-ए-कामिल का मतलब यह है कि आदमी ने अपने रब से जो अहद किया था, उसकी उसने अमली तस्दीक़ कर दी। वह हर हाल में अपने ईमानी इक़रार पर साबित-क़दम रहा।

31

अबूज़र रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "अल्लाह के नज़दीक सबसे अफ़ज़ल अमल है— अल्लाह के लिए मोहब्बत करना और अल्लाह के लिए ना-पसंद करना।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4,599)

आदमी के अंदर सबसे ज़्यादा ताक़तवर जज़्बा मोहब्बत और ना-पसंदीदगी का जज़्बा है। आदमी के तमाम आमाल इन्हीं दोनों जज़्बात के ज़ेरे-असर वाक़ेअ होते हैं। ये जज़्बात अल्लाह के ताबे हों, तो आदमी की ज़िंदगी इस्लामी ज़िंदगी बनेगी और अगर ये जज़्बात ग़ैर-ख़ुदा के ताबे हों, तो आदमी की ज़िंदगी ग़ैर-इस्लामी ज़िंदगी बन जाएगी। अल्लाह पर ईमान लाने का मतलब यह है कि अल्लाह ही इंसान का सब कुछ हो जाएगा। वह अपनी मोहब्बत, दुश्मनी और अना वग़ैरह जैसे जज़्बात को मुकम्मल तौर पर अल्लाह के हुक्म के ताबे कर दे। यह अल्लाह के नज़दीक अफ़ज़ल-तरीन अमल है।

32

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "मुस्लिम वह है, जिसकी ज़बान से

और उसके हाथ से मुसलमान महफ़ूज़ हों और मोमिन वह है, जिससे लोग अपने ख़ून और अपने माल के मामले में महफ़ूज़ हों।"
(सुनन अत-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2,627; सुनन अन-नसाई, हदीस नंबर 4,996)

मुसनद अहमद (हदीस नंबर 7,086) में 'मुस्लिम' की जगह 'अन-नास' का लफ़्ज़ है यानी तमाम इंसान की जान-ओ-माल महफ़ूज़ हो। मोमिन व मुस्लिम कौन है? यह वह इंसान है, जो इस हक़ीक़त को दरयाफ़्त करे कि ख़ुदा उसका ख़ालिक़-ओ-मालिक है और मौत के बाद आख़िरत की दुनिया में वह उसके सारे कारनामा-ए-हयात का हिसाब लेगा। यह अक़ीदा मोमिन के अंदर आख़िरत की पकड़ का शदीद अंदेशा पैदा कर देता है। यह अंदेशा उसे मजबूर कर देता है कि वह लोगों के साथ मामला करने में पूरी तरह मोहतात रहे। वह अपनी ज़बान से लोगों को तकलीफ़ न पहुँचाए। इंसानी हुक़ूक़ के मामले में वह किसी को शिकायत का मौक़ा न दे। अपने आपको ख़ुदा की पकड़ से बचाने का जज़्बा उसे इंसानों के मामले में आख़िरी हद तक बे-ज़रर बना देता है।

33

यह रिवायत अल-बैहक़ी ने फ़ज़ालह बिन उबैद के वास्ते से नक़्ल की है। इसमें यह इज़ाफ़ा है— "मुजाहिद वह है, जो अल्लाह की इताअत के लिए अपने नफ़्स से जिहाद करे और मुहाजिर वह है, जो ख़ताओं और गुनाहो को छोड़ दे।"

(शुएबुल ईमान अल-बैहक़ी, हदीस नंबर 10,611)

जिहाद का अस्ल मुहर्रिक अल्लाह की पकड़ का अंदेशा है। इसलिए हक़ीक़ी मुजाहिद वह है, जो सबसे पहले ख़ुद अपनी ज़ात के साथ जिहाद करे, वह अपने नफ़्स को ज़ेर करके अपनी ज़िंदगी को ख़ुदा

के ताबे बना दे। इसी तरह हिजरत (तर्क) का मुहर्रिक भी ख़ुदा का ख़ौफ़ है। असली मुहाजिर वह है, जिसे ख़ुदा की पकड़ का अंदेशा हर गुनाह को छोड़ने पर मजबूर कर दे।

34

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जब भी हमें ख़िताब करते तो बहुत कम ऐसा होता कि वे यह न फ़रमाएँ— "उसका ईमान नहीं, जिसके अंदर अमानत न हो और उसका दीन, दीन नहीं, जिसके अंदर अहद की पाबंदी न हो।"

(शुएबुल ईमान अल-बैहक़ी, हदीस नंबर 4,354; मुसनद अहमद, हदीस नंबर 12,383)

जब एक आदमी ईमान व इस्लाम को इख़्तियार करे तो इसके लाज़िमी नतीजे के तौर पर उसकी ज़िंदगी में एक इंक़िलाब आ जाता है। वह मुकम्मल तौर पर एक बा-उसूल इंसान बन जाता है। ऐसे शख़्स के लिए ना-मुमकिन होता है कि वह कोई ऐसा रवैया इख़्तियार करे, जो अमानत (trust) के ख़िलाफ़ हो। अहद करने के बाद अहद का तोड़ना उसे ऐसा लगता है, जैसे उसने ख़ुद अपने आपको तोड़ डाला।

35

उबादह बिन सामित रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना— "जो यह गवाही दे कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और यह कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं, उस पर अल्लाह ने जहन्नम की आग को हराम कर दिया है।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 29; सुनन अत-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2,638)

क़ौल और शहादत या कहने और गवाही देने में यह फ़र्क़ है कि क़ौल सिर्फ़ ज़बान से होता है, मगर शहादत वह है, जिसमें आदमी का पूरा वजूद शामिल हो जाए, जिसे दिल के पूरे इत्मीनान और ज़ेहन की कामिल तस्दीक़ के साथ अंजाम दिया जाए। ऐसी शहादत आदमी की पूरी शख़्सियत का इहाता किए हुए होती है। वह जब कहता है कि "ला-इलाहा इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" तो यह उसके लिए सिर्फ़ एक ज़बानी क़ौल नहीं होता, बल्कि इस वाक़ये का ऐलान होता है कि उसने अपनी ज़िंदगी के बारे में एक नया इंक़िलाबी फ़ैसला किया है। एक ऐसा फ़ैसला, जिससे उसकी ज़िंदगी का कोई भी पहलू और कोई भी शोबा ख़ाली नहीं।

36

उस्मान बिन अफ़्फ़ान रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "जिस शख़्स पर मौत आए और वह जानता हो कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, तो वह जन्नत में दाख़िल होगा।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 26)

इस हदीस में 'इल्म' का लफ़्ज़ आया है। कोई लफ़्ज़ कभी अपने इब्तिदाई मफ़्हूम में होता है और कभी अपने इंतिहाई मफ़्हूम में। यहाँ 'इल्म' का यह लफ़्ज़ अपने इंतिहाई मफ़्हूम में है। इसका मतलब यह है कि जो आदमी इस हक़ीक़त-ए-वाक़या को कामिल तौर पर जान ले कि इस कायनात का ख़ालिक़-ओ-मालिक और माबूद सिर्फ़ एक अल्लाह है और यह जानना इतना भरपूर हो कि इसी के मुताबिक़ उसकी ज़िंदगी गुज़रे और इसी पर उसकी मौत आए, तो ऐसा इंसान ख़ुदाई क़ानून के मुताबिक़ इसका मुस्तहिक़ है कि उसे जन्नत में दाख़िल किया जाए।

37

जाबिर बिन अब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "दो चीज़ें लाज़िम करने

वाली हैं।" एक शख़्स ने कहा— "ऐ ख़ुदा के रसूल, दो लाज़िम करने वाली चीज़ें क्या हैं?" आपने फ़रमाया— "जो आदमी इस हाल में मरे कि वह अल्लाह के साथ किसी चीज़ को शरीक करता था, तो वह जहन्नम में दाख़िल होगा और जो आदमी इस हाल में मरे कि वह अल्लाह के साथ किसी चीज़ को शरीक नहीं करता था, तो वह जन्नत में दाख़िल होगा।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 93)

ख़ुदा के साथ किसी को शरीक करना सबसे बड़ा गुनाह है और ख़ुदा के साथ किसी को शरीक न करना सबसे बड़ी नेकी। इसकी हक़ीक़त यह है कि इंसान अपनी फ़ितरत के एतिबार से यह चाहता है कि वह किसी चीज़ को अपना सब कुछ बनाए। उसे अपनी ज़िंदगी में सबसे ऊँचा मक़ाम दे। अपने ख़ौफ़ और मोहब्बत के जज़्बात को सबसे ज़्यादा उसके साथ वाबस्ता करे। वही उसके लिए एतिमाद और तवक्कुल का सरचश्मा हो। यह दर्जा सिर्फ़ एक ख़ुदा को देना तौहीद है और ख़ुदा के सिवा किसी और से इस क़िस्म की वाबस्तगी इख़्तियार करना शिर्क है। ख़ुदा का यह फ़ैसला है कि उसकी दुनिया में अहले-तौहीद को नजात मिले और अहले-शिर्क फ़लाह व नजात से महरूम रह जाएँ।

38

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास बैठे हुए थे और हमारे साथ इस मजलिस में अबू बक्र और उमर रज़ियल्लाहु अनहुमा भी थे। फिर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम हमारे दरमियान से उठे। जब आपने वापसी में देर लगाई, तो हमें अंदेशा हुआ कि हमारी ग़ैर-मौजूदगी में आपको कोई नुक़सान न पहुँच गया हो। पस हम घबरा गए और उठ खड़े हुए और मैं घबराने वालों में पहला शख़्स था। फिर मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को तलाश करते हुए

निकला, यहाँ तक कि मैं बनू नज्जार से ताल्लुक़ रखने वाले एक अंसार के बाग़ तक पहुँचा। बाग़ के चारों तरफ़ दीवार थी। मैं दीवार के इर्द-गिर्द घूमा कि क्या उसका कोई दरवाज़ा है, मगर मैंने नहीं पाया। फिर मैंने देखा कि एक नाली है, जो एक बैरूनी कुएँ से अंदर जा रही है।

वे कहते हैं कि मैंने कोशिश की, यहाँ तक कि मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास पहुँच गया। आपने फ़रमाया— "अबू हुरैरा?" उन्होंने ने कहा— "हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल!" आपने कहा— "तुम्हारा क्या हाल है?" मैंने कहा— "आप हमारे दरमियान थे। फिर आप उठे और वापसी में देर की। इससे हमें अंदेशा हुआ कि हमारी ग़ैर-मौजूदगी में आपको कोई नुक़सान न पहुँच गया हो। पस हम घबरा गए और मैं घबराने वालों में पहला शख़्स था। पस मैं इस बाग़ तक आया। इसमें दाख़िल हुआ, जिस तरह लोमड़ी दाख़िल होती है। दूसरे लोग मेरे पीछे आ रहे हैं।" आपने फ़रमाया— "ऐ अबू हुरैरा! और आपने अपने दोनों जूते मुझे दे दिए।" फिर आपने फ़रमाया— "तुम मेरे इन दोनों जूतों के साथ जाओ और इस बाग़ के उधर जो भी तुम्हें मिले, जो यह गवाही देता हो कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, वह इस पर क़ल्बी यक़ीन रखता हो तो तुम उसे जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दो।" सबसे पहले जिनसे मैं मिला, वे उमर फ़ारूक़ थे। उन्होंने कहा— "ये दोनों जूते किसके हैं, ऐ अबू हुरैरा!" मैंने कहा— "ये दोनों जूते रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के हैं। आपने मुझे इन दोनों के साथ भेजा है कि मैं जिस ऐसे शख़्स से मिलूँ, जो यह गवाही देता हो कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, वह इस पर क़ल्बी ईमान रखता हो तो मैं उसे जन्नत की ख़ुशख़बरी दे दूँ।" (यह सुनते ही) उमर ने मेरे सीने पर इतनी शिद्दत से मारा कि मैं पीछे की तरफ़ गिर गया। उन्होंने कहा— "ऐ अबू हुरैरा! वापस जाओ।"

चुनाँचे मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास वापस आया और मेरी हालत रोने वाली हो रही थी। मैंने देखा कि वे मेरे पीछे आ रहे हैं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "ऐ अबू हुरैरा! तुझे क्या हुआ?" मैंने कहा— "मैं उमर फ़ारूक़ से मिला और उन्हें इस बात की ख़बर दी, जिस बात को लेकर आपने मुझे भेजा था, तो उन्होंने मेरे सीने पर इतनी शिद्दत से मारा कि मैं पीछे की तरफ़ गिर गया। फिर उन्होंने कहा कि वापस जाओ।" यह सुनकर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "ऐ उमर तुमने ऐसा क्यों किया?" उन्होंने कहा— "ऐ ख़ुदा के रसूल, आप पर मेरे माँ-बाप क़ुर्बान हों! क्या आपने अबू हुरैरा को अपने दोनों जूतों के साथ भेजा था कि जो यह गवाही देता हुआ मिले कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, वह इस पर क़ल्बी यक़ीन रखता हो तो उसे जन्नत की ख़ुश-ख़बरी दे दो।" आपने फ़रमाया— "हाँ!" उमर ने कहा— "ऐसा न कीजिए, क्योंकि मुझे डर है कि लोग इस पर भरोसा कर लेंगे। उन्हें छोड़ दीजिए कि वे अमल करते रहें।" रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "फिर उन्हें छोड़ दो।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 31)

कोई ख़ारिजी या मिक़दारी अमल जन्नत की क़ीमत नहीं। जन्नत की क़ीमत इंसान का अपना वजूद है। जो आदमी ख़ुदा को इस तरह पाए कि उसकी हस्ती पूरी तरह ख़ुदा के रंग में रँग जाए। ख़ुदा के सिवा कोई चीज़ उसका कंसर्न (Concern) न रहे। वह अपने पूरे दिलो-दिमाग के साथ ख़ुदा वाला बन जाए, तो यही वह इंसान है, जिसके लिए जन्नत में दाख़िले का फ़ैसला किया जाए।

हज़रत उमर फ़ारूक़ का क़ौल अवाम की निस्बत से था। उन्होंने बजा तौर पर महसूस किया कि अवाम इस गहरी हक़ीक़त को नहीं समझेगी और सिर्फ़ ज़बान से शहादत के अल्फ़ाज़ बोल देने को नजात के लिए काफ़ी समझने लगेगी और फिर अपने आपको गुमराही में

मुब्तला कर लेगी। पैग़ंबर-ए-इस्लाम का क़ौल अगर बयान-ए-हक़ीक़त था, तो उमर फ़ारूक़ का क़ौल रिआयत-ए-अवाम।

39

मुआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हा कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने मुझसे फ़रमाया— "जन्नत की कुंजियाँ हैं— यह गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22,102)

"ला-इलाहा इल्लल्लाह" की गवाही (शहादत) देना यह है कि आदमी का पूरा वजूद इस हक़ीक़त का ज़िंदा ऐलान बन जाए कि एक अल्लाह के सिवा कोई नहीं, जो इबादत का हक़दार हो। शहादत का मतलब आदमी की पूरी हस्ती का इस रब्बानी हक़ीक़त में ढल जाना है। जो शख़्स उसकी शहादत का सबूत दे, उसके हक़ में ख़ुदा का यह फ़ैसला है कि जन्नत के तमाम दरवाज़े उसके लिए खोल दिए जाएँ।

40

उस्मान बिन अफ़्फ़ान रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की वफ़ात हुई, तो आपके अस्हाब में से कुछ लोग बहुत ज़्यादा ग़मगीन हो गए, यहाँ तक कि उनमें से बाज़ अफ़राद के अंदर वसवसा पैदा हो गया। उस्मान कहते हैं कि मैं उनमें से एक था। फिर जबकि मैं बैठा हुआ था, उमर मेरे सामने से गुज़रे। उन्होंने सलाम किया, मगर मुझे इसका एहसास नहीं हुआ। उमर ने इसका ज़िक्र अबू बक्र से किया। उसके बाद वे दोनों मेरे पास आए और दोनों ने मुझे सलाम किया। अबू बक्र ने कहा— "क्यों ऐसा हुआ कि तुमने अपने भाई उमर के सलाम का जवाब नहीं दिया?" मैंने कहा— "मैंने तो ऐसा नहीं किया।" उमर ने कहा— "हाँ, ख़ुदा की क़सम! तुमने ऐसा किया है।" उस्मान कहते हैं— "मैंने कहा कि ख़ुदा की क़सम, मुझे ख़बर नहीं

हुई कि तुम गुज़रे और तुमने मुझे सलाम किया।" अबू बक्र ने कहा— "उस्मान ने सच कहा।" फिर अबू बक्र ने उस्मान से पूछा कि क्या तुम्हें किसी चीज़ ने इससे बे-ख़बर रखा। मैंने कहा— "हाँ!" उन्होंने कहा— "वह क्या है?" मैंने कहा— "अल्लाह ने अपने नबी को वफ़ात दे दी, इससे पहले कि हम आपसे नजात के बारे में दरयाफ़्त करें।" अबू बक्र ने कहा— "मैंने इसके बारे में आपसे पूछा था।" उस्मान ने कहा— "यह सुनकर मैं अबू बक्र के पास गया और उनसे कहा कि मेरे माँ-बाप आप पर क़ुर्बान, इस बारे में सवाल करने के लिए आप लायक़-तर थे।" अबू बक्र ने कहा— "मैंने पूछा था कि ऐ अल्लाह के रसूल, इस मामले में नजात की क्या सूरत है? " रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "जो शख़्स मुझसे कलिमा-ए-तौहीद को क़ुबूल कर ले, जो मैंने अपने चचा के सामने पेश किया था, मगर उन्होंने इसे क़ुबूल करने से इनकार कर दिया तो यही उसकी नजात का ज़रिया होगा।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 20)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के चचा अबू तालिब एक मुशरिकाना अक़ीदे पर थे। इसी से उनकी पूरी अमली ज़िंदगी बनी। उसके बाद रसूलुल्लाह ने उनके सामने तौहीद का अक़ीदा पेश किया। यह सादा तौर पर एक लफ़्ज़ी मज्मूए को ज़बान से दोहराने का मामला न था, बल्कि इसका मतलब यह था कि अबू तालिब फ़िक्र व अमल के एक तरीक़े को छोड़कर फ़िक्र व अमल के दूसरे तरीक़े को इख़्तियार कर लें, मगर वे अपनी ज़िंदगी में इस क़िस्म की तब्दीली के लिए तैयार नहीं हुए। यही उसूल दूसरों की नजात के लिए भी है। जो आदमी अपने अक़ीदे व अमल को कलिमा-ए-तौहीद की बुनियाद पर तश्कील दे, वही अल्लाह के यहाँ नजात पाएगा और जो ऐसा न कर सके, वह नजात से महरूम रहेगा।

41

मिक़दाद बिन अस्वद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना कि ज़मीन की सतह पर कोई ख़ैमा या घर बाक़ी नहीं रहेगा, मगर अल्लाह उसमें इस्लाम का कलिमा दाख़िल कर देगा— इज़्ज़त वाले की इज़्ज़त के साथ और ज़लील की ज़िल्लत के साथ। अल्लाह या तो उन्हें इज़्ज़त देगा और उन्हें कलिमे वालों में से बना देगा या वह उन्हें ज़लील करेगा, फिर वे उसकी इताअत करेंगे। मैंने कहा कि फिर सारा दीन अल्लाह के लिए ही हो जाएगा। (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 23,814)

इस हदीस में ग़ालिबन उस वाक़ये की पेशीनगोई है, जो सनअती इंक़िलाब के बाद ज़हूर में आया। इस हदीस के मुताबिक़, यह बात पेशगी तौर पर मुक़द्दर थी कि इस्लाम का पैग़ाम सारी दुनिया में हर छोटे और बड़े घर में पहुँच जाए। इस वाक़ये को ज़हूर में लाने के लिए कम्युनिकेशन के वे जदीद ज़राए दरकार थे, जो सिर्फ़ मौजूदा ज़माने में सनअती इंक़िलाब के बाद ज़हूर में आए हैं। चुनाँचे मौजूदा ज़माने में पहली बार यह मुमकिन हुआ है कि इस्लाम की ऐसी उमूमी इशाअत की जाए कि कोई घर इससे बचा हुआ न हो। यह अमल (process) आज तेज़ी से जारी हो चुका है। जल्द ही वह वक़्त आने वाला है, जबकि हदीस की पेशीनगोई लफ़्ज़ी तौर पर पूरी तरह वुक़ू में आ जाए।

इस हदीस में जिस वाक़ये का ज़िक्र है, इससे मुराद सारी दुनिया में पैग़ाम-ए-इस्लाम को आम करना है, न कि सारी दुनिया के ऊपर अहले-इस्लाम का सियासी ग़लबा। इस हदीस में कलिमा-ए-इस्लाम से मुराद क़ुरआन है यानी क़ुरआन को हर घर में और हर इंसान तक पहुँचाया जाए। घर से मुराद सिर्फ़ रिहायशगाह नहीं है, बल्कि इसका मतलब यह है कि हर तालीमगाह, हर लाइब्रेरी, हर इदारा, हर होटल

वग़ैरह में इसे पहुँचा देना। इस्लाम का अस्ल निशाना यह है कि हर पैदा होने वाला अपने रब के अहकाम से बाख़बर हो जाए, न यह कि सारे इंसान के ऊपर किसी एक गिरोह की हुकूमत क़ायम हो जाए।

42

वहब बिन मुनब्बिह से पूछा गया— "क्या 'ला-इलाहा इल्लल्लाह' जन्नत की कुंजी नहीं है?" उन्होंने कहा—"हाँ, मगर हर कुंजी के दंदाने (tooth) होते हैं। पस अगर तुम ऐसी कुंजी लेकर आए, जिसमें दंदाने हैं तो तुम्हारे लिए वह खुल जाएगा, वरना वह तुम्हारे लिए नहीं खुलेगा।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1,237)

वहब बिन मुनब्बिह ताबई (वफ़ात : 114 हिजरी) ने कुंजी के साथ दंदाने की शर्त लगाई है। उन्होंने तमसील की ज़बान में बताया है कि शहादत के कलिमे से मुराद सिर्फ़ उसकी लफ़्ज़ी अदायगी नहीं है, बल्कि कलिमे को उसके फ़िक्री और अमली तक़ाज़ों के साथ इख़्तियार करना है। इन तक़ाज़ों के बग़ैर कलिमे की मिसाल ऐसी ही है, जैसे दंदाने के बग़ैर कुंजी।

43

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "तुममें से कोई शख़्स जो अपने इस्लाम को दुरुस्त करे तो हर वह नेकी, जिसे वह करेगा तो वह उसके लिए दस गुना से लेकर सात सौ गुना तक लिखी जाएगी और हर वह बुराई, जिसे वह करेगा तो वह उसके लिए इसी के बराबर लिखी जाएगी, यहाँ तक कि वह अल्लाह से जा मिले।"

(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 42; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 129)

एक शख़्स जो दिल से मोमिन हो, उससे अगर कभी कोई बुराई सरज़द होती है तो उसे उकसाने वाली सिर्फ़ एक चीज़ होती है और वह है— वक़्ती तौर पर नफ़्सानी जज़्बे में बह जाना। गोया कि मोमिन की हर बुराई अपने दर्जे के एतिबार से एक इत्तिफ़ाक़ी बुराई होती है, इसलिए उसके नाम-ए-आमाल में भी वह सिर्फ़ एक दर्जे की बुराई के तौर पर लिखी जाती है, मगर मोमिन की नेकी मुस्बत जज़्बे के तहत होती है। इस बिना पर कैफ़ियत के एतिबार से इसमें फ़र्क़ होता रहता है। मिसाल के तौर पर मोमिन कभी आदत के तहत रूटीन की नमाज़ पढ़ता है। कभी वह नमाज़ इस तरह पढ़ता है कि इसमें ख़ुशू की कैफ़ियत भी शामिल हो जाती है। कभी ऐसा होता है कि ख़ुशू और ख़ुज़ू की कैफ़ियत बेहिसाब हद तक बढ़ जाती है। इस तरह कैफ़ियात के फ़र्क़ की निस्बत से मोमिन की नेकी उसके आमाल में कभी मामूल की नेकी के तौर पर लिखी जाती है और कभी ग़ैर-मामूली इज़ाफ़ों के साथ सैकड़ों गुना या हज़ारों गुना ज़्यादा बड़ी नेकी की हैसियत से।

44

अबू उमामा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं— "एक शख़्स ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से पूछा कि ईमान क्या है?" आपने फ़रमाया— "जब तुम्हें अपनी नेकी से ख़ुशी हो और तुम्हें अपनी बुराई से तकलीफ़ पहुँचे, उस वक़्त तुम मोमिन हो।" उन्होंने कहा— "ऐ ख़ुदा के रसूल, गुनाह क्या है?" आपने फ़रमाया— "जब तुम्हारे दिल में कोई चीज़ खटके तो उसे छोड़ दो।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22,166)

ईमानी शऊर जब हक़ीक़ी मअनों में किसी के अंदर पैदा होता है, तो वह उसकी ग़फ़लत को तोड़ देता है। वह उसकी बे-हिसी को ख़त्म करके उसे एक हस्सास इंसान बना देता है, उसकी यह ईमानी हस्सासियत हर लम्हा अपना काम करती रहती है। नेकी के फ़ेल पर उसे

ख़ुशी जैसे एहसास का तजुर्बा होता है और अगर उससे बुराई सरज़द हो, तो उसकी अंदरूनी हस्सासियत फ़ौरन बेदार होकर उसे मलामत करने लगती है। ऐसी हालत में बेहतरीन तरीक़ा यह है कि मोमिन अपने दिल को रहनुमा बना ले। जिस काम पर दिल मुतमइन हो, उसे करे और जिस काम पर दिल मुतमइन न हो, उसे छोड़ दे।

45

अम्र बिन अबसा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास आया। मैंने कहा— "ऐ ख़ुदा के रसूल! इस काम में आपके साथ कौन है?" आपने फ़रमाया— "एक आज़ाद और एक ग़ुलाम।" मैंने कहा— "इस्लाम क्या है?" आपने फ़रमाया— "अच्छा बोल बोलना और खाना खिलाना।" मैंने कहा— "ईमान क्या है?" आपने फ़रमाया— "सब्र और रवादारी।" वे कहते हैं— "मैंने कहा कि अफ़ज़ल इस्लाम कौन-सा है?" आपने फ़रमाया— "जिसकी ज़बान और हाथ से मुसलमान महफ़ूज़ हों।" वे कहते हैं— "मैंने कहा कि कौन-सा ईमान अफ़ज़ल है?" आपने फ़रमाया— "अच्छा अख़्लाक़।" वे कहते हैं— "मैंने कहा कि कौन-सी नमाज़ अफ़ज़ल है?" आपने फ़रमाया— "लंबा ख़ुशू।" वे कहते हैं— "मैंने कहा कि अफ़ज़ल हिजरत कौन-सी है?" आपने फ़रमाया— "तुम उस चीज़ को छोड़ दो, जिसे तुम्हारा रब ना-पसंद करता है।" वे कहते हैं— "मैंने कहा कि कौन-सा जिहाद अफ़ज़ल है?" आपने फ़रमाया— "जिसके घोड़े के पाँव काट दिए जाएँ और उसका ख़ून बहा दिया जाए।" वे कहते हैं— "मैंने कहा कि अफ़ज़ल घड़ी कौन-सी है?" आपने फ़रमाया— "आख़िरी रात की तिहाई।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 19,435)

इस हदीस में अफ़ज़ल आमाल की जो मुख़्तलिफ़ सूरतें बताई गई हैं, वे एक ही हक़ीक़त की मुख़्तलिफ़ अलामतें हैं। एक इंसान के अंदर

जब ईमान का गहरा शऊर पैदा हो जाए, तो उसके असरात उसकी ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ शोबों में ज़ाहिर होने लगते हैं, यहाँ तक कि वह उसी राह में क़ुर्बान हो जाता है, जो गोया उसके ईमानी अहद का आख़िरी सबूत है।

46

मुआज़ बिन जबल रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं— "मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को यह कहते हुए सुना कि जो शख़्स अल्लाह से इस हाल में मिले कि उसने उसके साथ किसी चीज़ को शरीक नहीं किया था और उसने पाँचों नमाज़ें पढ़ी हों और रमज़ान के रोज़े रखे हों, तो उसे बख़्श दिया जाएगा।" मैंने कहा— "मैं लोगों को इसकी ख़ुश-ख़बरी न दे दूँ! आपने फ़रमाया— "उन्हें छोड़ दो कि वे अमल करते रहें।" (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22,028)

इस हदीस में इस्लाम की तीन बुनियादी तालीमात का ज़िक्र है— कलिमा, नमाज़ और रोज़ा। कलिमे की हक़ीक़त मारिफ़त-ए-ख़ुदावंदी है। नमाज़ की हक़ीक़त ख़ुज़ू-ओ-ख़ुशू की हद तक ताल्लुक़ बिल्लाह है। रोज़े की हक़ीक़त ज़ब्त-ए-नफ़्स की हद तक जाकर मुस्लिम बन जाना है। जिस आदमी के अंदर ये सिफ़ात पैदा हो जाएँ, वह सिर्फ़ तीन मअनों में नहीं, बल्कि तमाम मअनों में ख़ुदा का सच्चा बंदा बन जाएगा।

47

मुआज़ बिन जबल कहते हैं कि उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से अफ़ज़ल ईमान की बाबत सवाल किया। आपने फ़रमाया— "यह कि तुम अल्लाह के लिए पसंद करो और तुम अल्लाह के लिए ना-पसंद करो और अपनी ज़बान को अल्लाह के ज़िक्र में मशग़ूल रखो।" उन्होंने कहा— "और क्या, ऐ ख़ुदा के रसूल?" आपने

फ़रमाया— "तुम दूसरों के लिए वही पसंद करो, जो तुम ख़ुद अपने लिए पसंद करते हो और तुम दूसरों के लिए भी उस चीज़ को ना-पसंद करो, जिसे तुम अपने लिए ना-पसंद करते हो।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22,130)

अफ़ज़ल ईमान से मुराद आला ईमान है। यह आला ईमान उस वक़्त पैदा होता है, जबकि आदमी का ईमान सिर्फ़ लफ़्ज़ी इक़रार के हम-मअनी न हो, बल्कि वह शऊरी दरयाफ़्त और दाख़िली इंक़िलाब की हैसियत रखता हो। इस क़िस्म का ईमान जब किसी को मिलता है, तो उसके अंदर वही रुहानी और अख़्लाक़ी सिफ़ात पैदा हो जाती हैं, जिनका इस हदीस में ज़िक्र किया गया है। "अल्लाह के लिए पसंद करो और तुम अल्लाह के लिए ना-पसंद करो" का मतलब यह है कि मोहब्बत और नफ़रत वग़ैरह के जज़्बात को अपनी ख़्वाहिश के ताबे करने के बजाय मुकम्मल तौर पर अल्लाह के ताबे करना। एक मौक़े पर हज़रत आइशा के ख़िलाफ़ इल्ज़ाम लगाने वालों में एक साहब मिस्तह बिन उसासा थे। वे एक मुफ़लिस मुहाजिर और हज़रत अबू बक्र के दूर के रिश्तेदार थे। हज़रत अबू बक्र उनकी माली मदद करते थे। हज़रत आइशा अबू बक्र की साहबज़ादी थीं। क़ुदरती तौर पर हज़रत अबू बक्र को मिस्तह बिन उसासा के अमल से तकलीफ़ हुई। आपने क़सम खा ली कि वह आइंदा मिस्तह की कोई मदद न करेंगे, लेकिन क़ुरआन में यह हुक्म उतरा, तुममें से जो लोग साहिब-ए-माल हैं, वे ज़ाती शिकायत की बिना पर बे-माल लोगों की इमदाद बंद न करें। क्या तुम नहीं चाहते कि ख़ुदा तुमको माफ़ कर दे? अगर तुम अपने लिए ख़ुदा से माफ़ी के उम्मीदवार हो तो तुम्हें भी दूसरों के बारे में माफ़ी का तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए (24:22)। यह आयत सुनकर हज़रत अबू बक्र ने कहा— "हाँ, ख़ुदा की क़सम! मैं पसंद करता हूँ कि अल्लाह मुझे माफ़ कर दे।" और दोबारा मिस्तह की इमदाद जारी कर दी।

(सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 2, सफ़ा 303-304)

मोमिन की नज़र में सबसे ज़्यादा अहमियत ख़ुदा की रज़ा होती है। ख़ुदा का हुक्म सामने आते ही वह फ़ौरन झुक जाता है, ख़्वाह ख़ुदा का हुक्म उसकी ख़्वाहिश के सरासर ख़िलाफ़ क्यों न हो।

क़ौल-ए-सदीद या मुतय्यन कलाम

क़ुरआन में एक तालीम इन अल्फ़ाज़ में आई है—

يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا اتَّقُوا اللَّهَ وَقُولُوا قَوْلًا سَدِيدًا.

"ऐ ईमान वालो, अल्लाह से डरो और दुरुस्त बात कहो।" (33:70)

कलाम की दो क़िस्में हैं— एक है सदीद कलाम और दूसरा है ग़ैर-सदीद कलाम। जिस तरह तीर ठीक निशाने की तरफ़ रुख़ करके चलाया जाता है, उसी तरह सदीद कलाम ठीक हक़ीक़त को सामने रखकर बोला जाता है।

सदीद कलाम वह है, जो ऐन मुताबिक़-ए-हक़ीक़त हो, जो वाक़यातीं तज्ज़िया (Analysis) पर मबनी हो और जो ठोस दलाइल के साथ पेश किया जाए। वह बात अस्ल हक़ीक़त से कुछ भी इधर या उधर हटी हुई न हो। इसके बर-अक्स ग़ैर-सदीद कलाम वह है, जिसमें हक़ीक़त की रिआयत शामिल न हो, जिसकी बुनियाद क़ियास व गुमान पर क़ायम हो, न कि हक़ीक़त-ए-वाक़या के इज़्हार पर। आदमी कोई भी बात कहे, तो वह बात बिलकुल क्लियर होनी चाहिए।

मसलन अगर एक शख़्स यह कहता है कि सहाबा के दौर में जंग-ए-सिफ़्फ़ीन और जंग-ए-जमल का जो वाक़या पेश आया, वह इस्लाम के दुश्मनों की साज़िश का नतीजा था। यह बयान सदीद बयान नहीं कहा जा सकता, इसलिए कि इसमें मुतय्यन नहीं है कि इस्लाम के

दुश्मन कौन हैं और उनकी साज़िश क्या थी, जो इस हद तक मुअस्सर हुई कि उस वक़्त के लोग दो मुख़ालिफ़ गिरोह बनकर आपस में लड़ गए यानी इसमें क्लियर ज़बान इस्तेमाल नहीं की गई है। इसमें साबित-शुदा हवाला मौजूद नहीं है। यह बयान तमाम-तर फ़र्ज़ी क़ियास पर मबनी है, न कि पुख़्ता इल्म पर।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दुआ करते हुए फ़रमाया—

اللَّهُمَّ سَدِّدْ لِسَانِي.

"ऐ अल्लाह, मेरी ज़बान को कौल-ए-सदीद की तौफ़ीक़ दे।"

(सुनन इब्न माजा, हदीस नंबर 3,830)

इस दुआ से अंदाज़ा होता है कि कौल-ए-सदीद की इस्लाम में कितनी ज़्यादा अहमियत है। इस्लाम के आदाब-ए-कलाम में यह बात लाज़िमी तौर पर शामिल है कि किसी अम्र के मुताल्लिक़ जो बात कही जाए, वह क्लियर हो। वह मुनासिब अल्फ़ाज़ (appropriate words) में कही गई हो। वह बयान ऐसे अल्फ़ाज़ में हो कि कोई शख़्स अगर उसकी तहक़ीक़ करना चाहे तो वह बा-आसानी तहक़ीक़ करके उसकी सेहत को मालूम कर सके। ऐसा न हो कि कहने वाले ने कह दिया, लेकिन सुनने वाले के लिए वह एक ग़ैर-वाज़ेह कलाम की हैसियत रखता हो।

कोई कलाम ख़्वाह वह दीन की बाबत हो या दुनिया की बाबत, वह ऐसा होना चाहिए कि सुनने या पढ़ने वाला मज़ीद तहक़ीक़ करके उसकी असलियत को दरयाफ़्त कर सके। कलाम में ऐसा हवाला मौजूद हो, जो कलाम की सेहत को मज़ीद जाँचने के लिए काफ़ी हो। कलाम मुश्तबा या ऐसे अल्फ़ाज़ पर मबनी न हो, जिसमें एक से ज़्यादा मअनों का एहतिमाल पाया जाए, बल्कि ऐसे अल्फ़ाज़ पर मबनी हो, जो सामे

(audience) के लिए पहले से मालूम और मुतय्यन हों। जो अपने मअनों में इतना वाज़ेह हो कि सुनते ही समझ में आ जाए।

कलाम-ए-सदीद के लिए यह बात भी लाज़िमी तौर पर ज़रूरी है कि इसमें जो बात भी कही जाए, ख़्वाह वह मनफ़ी बात हो या मुस्बत बात, इसमें कोई साबित-शुदा मिसाल मौजूद हो। ऐसा हरगिज़ न हो कि बात तो कह दी जाए, लेकिन सुनने वाले के सामने कोई मुतय्यन मिसाल न आए, जिसे लेकर वह बात की मज़ीद तहक़ीक़ कर सके। मिसाल के बग़ैर हर बात बे-बुनियाद बात है और बे-बुनियाद बात कभी वह बात नहीं हो सकती, जिसे कलाम-ए-सदीद कहा जाए।

मसलन अगर आप यह कहें कि काबा की तामीर हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने की थी। उस वक़्त काबा एक मुस्ततील (rectangle) इमारत की शक्ल में था और अब भी ब-दस्तूर वही सूरत क़ायम है। यह बात कलाम-ए-सदीद की मिसाल न होगी, क्योंकि अगर कोई शख़्स जाकर उसकी तहक़ीक़ करे तो वह पाएगा कि आज का काबा मुरब्बा (square) सूरत में है और उसका एक हिस्सा हतीम की सूरत में ख़ाली पड़ा हुआ है। इस वक़्त कोई शख़्स यह कहे कि इब्तिदाई काबा मुस्ततील सूरत में था, अब वह मुरब्बा सूरत में है। अब अगर कोई शख़्स मक्का जाकर उसकी तस्दीक़ करना चाहे तो वह दरयाफ़्त कर लेगा कि यह बयान दुरुस्त है।

इस मिसाल से समझा जा सकता है कि कलाम-ए-सदीद क्या है और कलाम-ए-ग़ैर-सदीद क्या। कलाम-ए-सदीद वह है, जो क़ाबिल-ए-तस्दीक़ (verifiable) हो। इसके बर-अक्स कलाम-ए-ग़ैर-सदीद वह है, जिसे वेरीफाई (verify) न किया जा सके, जिसमें सामे के लिए यह मुमकिन न हो कि वह कलाम की तहक़ीक़ करके यक़ीन के साथ यह जान सके कि कहने वाले ने जो कहा या लिखने वाले ने जो कुछ लिखा, वह कलाम वाक़ये के मुताबिक़ है या वाक़ये के मुताबिक़ नहीं है।

तज़ाद में जीना

लोगों की तहरीरों को पढ़िए तो तक़रीबन तमाम लोग मुतज़ाद (contradictory) बातें करते हुए नज़र आते हैं। मसलन हर एक अपनी जमात के कारनामे बयान करेगा और फिर यह भी बताएगा कि उम्मत अपनी बदहाली की आख़िरी हद पर पहुँच चुकी है। यह बिला-शुब्हा मुतज़ाद बयान है। अगर आपके लीडर वाक़ई एक लीडर थे, तो उन्हीं लीडर के ज़माने में बदहाली का वाक़या क्यों पेश आया?

इस तज़ाद-बयानी का सबब यह है कि लोग अपनी शख़्सियतों को बड़ा-बड़ा क्रेडिट देना चाहते हैं। इसी के साथ वे इस वाक़ये का इनकार नहीं कर पाते कि इन शख़्सियतों ने ज़मीनी सतह पर कोई मुस्बत वाक़या अंजाम नहीं दिया। यह शख़्सियत-परस्ती का ज़ाहिरा है। शख़्सियत-परस्ती में हमेशा ऐसा ही होता है। लोग अपने मिज़ाज की बिना पर अपनी शख़्सियतों की तारीफ़ में जीना चाहते हैं, लेकिन जब हक़ीक़ी सूरतेहाल को देखते हैं, तो नज़र आता है कि ज़मीनी हालात उसकी तस्दीक़ नहीं कर रहे हैं। मसलन एक साहब ने अपनी पसंदीदा शख़्सियत को ज़माना-साज़ शख़्सियत बताया है, मगर दूसरे मक़ाम पर जब वे इसी अहद का ज़िक्र करते हैं, तो उन्हें नज़र आता है कि वह ज़माना एक बुरा दौर है।

इस तज़ाद-ए-ज़हनी का सबब यह है कि लोग ग़लती का एतिराफ़ करना नहीं जानते। वे मफ़रूज़ा शख़्सियतों की क़सीदा-ख़्वानी से तो वाक़िफ़ हैं, लेकिन ग़लती का एतिराफ़ करने के अल्फ़ाज़ उनकी डिक्शनरी में मौजूद नहीं। बे-एतिराफ़ीका यह मिज़ाज बिला-शुब्हा ज़हनी इर्तिक़ा (intellectual development) में सबसे बड़ी रुकावट है।

ग़लती का एतिराफ़ न करना ज़हनी इर्तिक़ा में रुकावट क्यों है? इसका सबब यह है कि जब आप एक शख़्सियत को क़सीदा-ख़्वानी का मौज़ू बना लें, तो आपको सिर्फ़ अल्फ़ाज़ मिलेंगे, हक़ाइक़ नहीं मिलेंगे। इसी तरह ग़लतियों का वजूद ख़त्म नहीं होगा और ग़लती ख़्वाह कैसी भी हो, वह इंसान को हक़ाइक़ से दूर कर देती है, जो कि ज़हनी इर्तिक़ा का ज़रिया है।

टर्मॉइल यानी परेशानी

10 फ़रवरी, 2020 को मेरे ऑफ़िस के ईमेल पर एक पाकिस्तानी ऑडियंस ने यह पैग़ाम भेजा—

आप मेरे लिए दुआ करें, मैं परेशानी में मुब्तला हूँ।
Pray for me, I am in turmoil.

अजीब बात है कि आज ही का वाक़या है कि किसी से बात करते हुए मैंने कहा कि मेरी ज़िंदगी में एक ऐसी परेशानी पेश आई, जो शायद मेरी ज़िंदगी की सबसे बड़ी परेशानी थी। हक़ीक़त यह है कि परेशानी ख़्वाह कितनी ही बड़ी हो, वह आपको दुआ के लिए एक पॉइंट ऑफ़ रेफ़रेंस देती है। लोग इस राज़ को जानते नहीं, इसलिए वे परेशानी को सिर्फ़ परेशानी के ख़ाने में डाल देते हैं, परेशानी को दुआ के ख़ाने में डालना जानते ही नहीं। हालाँकि अगर वे इस राज़ को जानें, तो उनके लिए परेशानी एक अज़ीम ख़ैर का सबब बन जाए।

इंसान की ज़िंदगी में पेश आने वाली परेशानी का मामला पतझड़ की तरह का है। पतझड़ का सबक़ यह है कि ख़ालिक़ इंसानों को ऑक्सीजन की मुसलसल सप्लाई के लिए पुराने पत्तों (leaves) की जगह फ्रेश और नए पत्ते ला रहा है। यही मामला इंसानी ज़िंदगी का है,

जिसे स्कॉटिश राइटर सैमुअल स्माइल्स (1812-1904) ने बजा तौर पर इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—

> "It is not ease, but effort, not facility, but difficulty that makes men. There is, perhaps, no station in life in which difficulties have not to be encountered and overcome before any decided measure of success can be achieved."
>
> "आसानी नहीं, बल्कि कोशिश; सहूलत नहीं, बल्कि मुश्किल इंसान को बनाती है। शायद इंसान की ज़िंदगी में कोई ऐसा पड़ाव नहीं है, जहाँ इंसान को मुश्किलात का सामना न पेश आए और कामयाबी के फ़ैसलाकुन मिक़दार को हासिल करने से पहले उस पर ग़लबा हासिल न करे।"

डायरी 1986

11 फ़रवरी, 1986

आज तब्लीग़ी जमात के कई लोग मिलने के लिए आए। उनसे गुफ़्तुगू करते हुए मैंने कहा कि सोचने के दो अंदाज़ हैं— एक है ख़ारिजी अंदाज़-ए-फ़िक्र और दूसरा है दाख़िली अंदाज़-ए-फ़िक्र।

ख़ारिजी अंदाज़-ए-फ़िक्र का मतलब यह है कि हम अपने मसाइल का ज़िम्मेदार दूसरों को समझें। मसलन दूसरों का तास्सुब, दूसरों की साज़िश, दूसरों के ज़ुल्म वग़ैरह। जो लोग इस तरह सोचें, उनके लिए काम अपने आपसे बाहर रहेगा। वे दूसरों के ख़िलाफ़ एहतिजाज करेंगे। वे दूसरों से मुतालबात करेंगे। चूँकि उनके नज़दीक मसला अपने आपसे बाहर पैदा हुआ है, इसलिए वह बाहर से ही हल हो सकता है। इसके मुक़ाबले में

दाख़िली अंदाज़-ए-फ़िक्र का मतलब अपने मसाइल का ज़िम्मेदार अपने आपको समझना है। इस दूसरी सूरत में सारा मामला बदल जाता है। अब आपकी सारी तवज्जोह ख़ुद अपनी तरफ़ लग जाती है।

मैंने कहा कि इस वक़्त जितनी भी तहरीकें मुसलमानों में चल रही हैं, वे सब ख़ारिजी अंदाज़-ए-फ़िक्र पर चल रही हैं। सब-की-सब दूसरों के ख़िलाफ़ मुहिम चलाने में मसरूफ़ हैं।

इस उमूम में सिर्फ़ एक इस्तिसना है और वह तब्लीग़ी जमात का है। तब्लीग़ी जमात का फ़िक्र यह है कि हमारे तमाम मसाइल अल्लाह के बाब में अपनी कोताही से पैदा हुए हैं। अपनी कोताही को दुरुस्त कर लो तो ख़ुदा की रहमत तुम्हारी तरफ़ माइल होगी और तुम्हारे तमाम मामलात दुरुस्त हो जाएँगे।

मैंने कहा कि मेरे नज़दीक यही दाख़िली अंदाज़-ए-फ़िक्र सही है। इस एतिबार से हमारा मिशन और तब्लीग़ का मिशन एक है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि तब्लीग़ के लोग तक़रीर की राह से काम कर रहे हैं और हम तहरीर की राह से।

12 फ़रवरी, 1986

आज मैंने 'रीडर्स डाइजेस्ट' (फ़रवरी, 1986) पढ़ा। 'रीडर्स डाइजेस्ट' का यह तरीक़ा है कि वह ख़ाली जगहों पर छोटी-छोटी इबारतें (phrases) शाए करता है, जिसे आजकल की ज़बान में फिलर (filler) कहते हैं। ये इबारतें बड़ी-बड़ी क़ीमतें देकर लोगों से हासिल की जाती हैं।

'रीडर्स डाइजेस्ट' के मज़्कूरा शुमारा में सफ़ा 152 पर दो लाइन का एक फिलर हस्बे-ज़ैल है—

> "Headline of an article on a controversial press censorship bill— THE RIGHT TO WRITE.''

इस सुर्ख़ी का उर्दू तर्जुमा करें तो वह यह होगा— 'लिखने का हक़'। उर्दू सुर्ख़ी में ब-ज़ाहिर कोई ऐसी ख़ुसूसियत नज़र नहीं आती कि एक मैगज़ीन उसे क़ीमत देकर किसी से ख़रीदे और उसे अपने एक सफ़ा में बतौर फिलर इस्तेमाल करे, मगर अंग्रेज़ी में देखिए तो वह एक बेहद दिलचस्प सुर्ख़ी मालूम होती है। अंग्रेज़ी अल्फ़ाज़ में यह सुर्ख़ी इस क़दर अछूती है कि आदमी उसे देखकर फ़ौरन अस्ल मौज़ू को पढ़ना चाहेगा।

इसका मतलब यह नहीं कि उर्दू ज़बान कोई कमतर ज़बान है और अंग्रेज़ी ज़बान एक बरतर ज़बान। यह फ़र्क़ तमाम-तर इत्तिफ़ाक़ी है। ऐन मुमकिन है कि एक और सुर्ख़ी उर्दू ज़बान में बहुत बा-माना नज़र आए, मगर अंग्रेज़ी में तर्जुमा होकर वह अपनी नुदरत (uniqueness) को खो दे।

यही मामला हर चीज़ का है। बाज़ ख़ुसूसियत हक़ीक़ी होती हैं और बाज़ ख़ुसूसियत इत्तिफ़ाक़ी। किसी चीज़ के बारे में सही राय वही लोग क़ायम कर सकते हैं, जो हक़ीक़ी और इत्तिफ़ाक़ी के फ़र्क़ को अच्छी तरह जानते हों।

13 फ़रवरी, 1986

आजकल दिल्ली में आलमी किताबी नुमाइश (वर्ल्ड बुक फेयर) हो रही है। आज मैंने उसे देखा। मुख़्तलिफ़ मुल्कों के स्टॉल बहुत बड़े पैमाने पर लगाए गए हैं। आदमी यहाँ पंद्रह ज़बानों में किताबें हासिल कर सकता है। एक हिस्से में मुख़्तलिफ़ मज़हबी मिशन के स्टॉल लगे हुए हैं। एक हिंदू मिशन के स्टॉल पर एक किताब नज़र से गुज़री। इसका टाइटल यह था— "Bhagvad Gita: As It Is"

यह टाइटल मुझे बहुत पसंद आया। मैंने सोचा कि उसी अंदाज़ पर एक किताब इस्लाम के बारे में छपनी चाहिए। इसका टाइटल हस्बे-ज़ैल हो— "Islam: As It Is"

इंशा अल्लाह, इस नाम से एक किताब शाए की जाएगी। इस किताब के चार हिस्से होंगे। पहले हिस्से में क़ुरआन की मुंतख़ब आयतों का तर्जुमा, दूसरे हिस्से में मुंतख़ब अहादीस का तर्जुमा, तीसरे हिस्से में रसूलुल्लाह के मुंतख़ब वाक़यात और चौथे हिस्से में सहाबा के मुंतख़ब वाक़यात।

ये सब चीज़ें बग़ैर तशरीह के जमा की जाएँ। अपनी तरफ़ से सिर्फ़ मुख़्तसर उनवान का इज़ाफ़ा हो। इस्लाम के तआरुफ़ के लिए, इंशा अल्लाह, यह एक बहुत मुफ़ीद किताब साबित होगी।

आजकल ग़ैर-मुस्लिमों में इस्लाम के मुताले का काफ़ी रुझान पैदा हुआ है, मगर वे इस्लाम को जैसा है, वैसा ही (as it is) पढ़ना चाहते हैं। इस सिलसिले में एक ज़रूरत यह है कि क़ुरआन और हदीस के तर्जुमे शाए किए जाएँ। दूसरा काम यह है कि इस अंदाज़ में कुछ मुख़्तसर किताबें तैयार की जाएँ। इंशा अल्लाह, इस दूसरे काम के ज़ेल में 'इस्लाम : एज़ इट इज़' एक मुफ़ीद किताब साबित होगी।

नुमाइश में इस्लामी मरकज़ का बुक स्टॉल भी लगा हुआ है। यहाँ काफ़ी ग़ैर-मुस्लिम आ रहे हैं और ज़्यादातर वे तर्जुमा-ए-क़ुरआन माँगते हैं। कुछ रूसी भी आए और उन्होंने रूसी ज़बान में क़ुरआन का तर्जुमा तलब किया।

14 फ़रवरी, 1986

'तज़्कीरुल क़ुरआन' के 26 पारे हो गए हैं। जब मैं इसके बारे में सोचता हूँ, तो यह सब मुझे एक ख़्वाब मालूम होता है। 'तज़्कीरुल क़ुरआन' सबसे पहले किस क़द्र मुख़्तलिफ़ शक्ल में 'अल-जमीयत वीकली' में शुरू हुआ, मगर चंद क़िस्तों के बाद उसका सिलसिला बंद हो गया। इसके बाद 'अल-रिसाला' में इसका सिलसिला मौजूदा शक्ल में शुरू हुआ, तो इसे मैंने अपनी हलाकत की क़ीमत पर लिखा है। इसका हर

सफ़ा इस तरह लिखा गया है कि मुझे ऐसा मालूम होता था कि अब इसका अगला सफ़ा लिखना मुझे नसीब न होगा।

'तज़्कीरुल क़ुरआन' से मेरा लगाव इतना ज़्यादा रहा है कि उस रात को जबकि मेरा हाथ बिजली के जंक्शन बॉक्स में था और बिजली की लहरें मेरे जिस्म में दौड़ रही थीं, उस वक़्त भी मुझे यही फ़िक्र लाहक़ थी कि मेरा तो आख़िरी वक़्त आ गया, अब 'तज़्कीरुल क़ुरआन' को कौन मुकम्मल करेगा (तफ़्सील के लिए मुलाहिज़ा हो, 'अल-रिसाला'; अक्तूबर, 1983; ब-उनवान— दोबारा ज़मीन पर)

आख़िरकार जब 'तज़्कीरुल क़ुरआन' के 10 पारे हो गए तो मज़्कूरा बाला नफ़्सियात की बिना पर मुझे महसूस हुआ कि अब उसकी आख़िरी हद आ गई। अब मैं इसके आगे कुछ न लिख सकूँगा। मैंने चाहा कि मेरी ज़िंदगी ही में इसकी पहली जिल्द छप जाए, मगर उस वक़्त मेरे पास ज़रूरी रक़म मौजूद न थी। अल्लाह तआला ने ऐन उसी ज़माने में अज़ीज़म शकील अहमद ख़ाँ को दिल्ली भेजा। जब उन्हें मालूम हुआ कि 'तज़्कीरुल क़ुरआन' की पहली जिल्द छपने के लिए तैयार है, तो वे उसकी रक़म फ़राहम करने के लिए आमादा हो गए। वे फ़ौरन कलकत्ता गए और हवाई जहाज़ से वापस आकर 25 हज़ार रुपये मेरे हवाले कर दिए।

इसके बाद मेरी तवक़्क़ुआत के ख़िलाफ़ मज़ीद 5 पारे हो गए तो दोबारा पहली जिल्द 15 पारों के साथ छापी गई। अब ख़ुदा के फ़ज़्ल से 26 पारे हो गए हैं और काम तेज़ी से जारी है। इंशा अल्लाह, उम्मीद है कि 1986 मे इसकी दूसरी और आख़िरी जिल्द छप जाएगी, क्योंकि तहरीर के साथ उसकी किताबत का काम भी जारी है। एक कातिब मुस्तक़िल तौर पर सिर्फ़ 'तज़्कीरुल क़ुरआन' की किताबत कर रहे हैं।

15 फ़रवरी, 1986

जनाब अब्दुल रहमान अंतुले (साबिक़ चीफ़ मिनिस्टर महाराष्ट्र) का 11 फ़रवरी, 1986 को लिखा ख़त मिला। यह छह सफ़हात का ख़त है। उन्हें हाल में इत्तिफ़ाक़ से 'अल-रिसाला' उर्दू का शुमारा नंबर 110 (जनवरी, 1986) और 111 (फ़रवरी, 1986) मिला। वे इससे ग़ैर-मामूली तौर पर मुतास्सिर हुए। वे लिखते हैं—

> "पूरी तरह हर लफ़्ज़ को बा-क़ायदा ग़ौर से पढ़ा। लुत्फ़-अंदोज़ होकर ख़त्म किया। ज़बान से बे-साख़्ता 'सुब्हान अल्लाह' निकल पड़ा और दिल ने इस ज़माने का मुज्तहिद पा लिया। आपका क़लम जिहाद में और आपका दिलो-दिमाग़ इज्तिहाद में मशग़ूल है। फिर मैंने सोचा कि इस क़दर बड़ी नेमत को पाने में मेरी ज़िंदगी के तक़रीबन 11 महीने सर्फ़ हो गए। आपका अंदाज़ क़ुरआनी है, फिर मुख़ातब को समझने में परेशानी कैसे हो। हज़रत मौलाना अबुल कलाम, हज़रत मौलाना मौदूदी और हज़रत मौलाना वहीदुद्दीन। पहले का अंदाज़ आलिमाना, दूसरे का फ़ाज़िलाना और तीसरे का आक़िलाना और कभी भी आलिम हो या फ़ाज़िल, बग़ैर अक़्लमंदी के इल्म और फ़ज़ीलत बेमाना हैं।"

अगले दिन अंतुले साहब के दामाद आए। उनके साथ महाराष्ट्र के साबिक़ होम सेक्रेटरी भी थे। उन्होंने कहा कि मैंने बहुत-से वज़ीरों और चीफ़ मिनिस्टरों को देखा है, मगर जो क़ुव्वत अख़्ज़ (grasp) मैंने अंतुले साहब में देखा, वह किसी के अंदर नहीं पाया। (जनाब अब्दुल रहमान अंतुले का 2 दिसंबर, 2014 को इंतिक़ाल हो चुका है।)

16 फ़रवरी, 1986

मिस्टर प्रेम नारायण गुप्ता आज मौलाना हमीदुल्लाह नदवी के साथ भोपाल से दिल्ली आए। उन्होंने आते ही कहा— "आज मैं

एक सच्चे इंसान से मिलने की ख़ुशी हासिल कर रहा हूँ।" वे 'अल-रिसाला' उर्दू और अंग्रेज़ी पाबंदी से पढ़ रहे हैं और बहुत मुतास्सिर हैं। उन्होंने कहा कि मुस्लिम मसाइल पर आप जिस तरह लिखते हैं, इसे मुसलमान कैसे बर्दाश्त करते हैं और आपको इस तरह लिखने की जुर्रत कैसे होती है?" मैंने कहा कि मैं जो कुछ लिखता हूँ, दलील से लिखता हूँ और जो शख़्स दलील पकड़ा हुआ हो, उसकी काट किसी के लिए मुमकिन नहीं।

उन्होंने मेरी किताब 'पैग़ंबर-ए-इंक़िलाब' और मौलाना सय्यद सुलेमान नदवी की किताब 'ख़ुतबात-ए-मद्रास' हाल में पढ़ी है। 'ख़ुतबात-ए-मद्रास' उन्हें पसंद नहीं आई, क्योंकि इसमें पैग़ंबर-ए-इस्लाम को इस तरह पेश किया गया है गोया कि वे मुसलमानों के क़ौमी हीरो हैं। इसके बर-अक्स मेरी किताब में रसूलुल्लाह एक हक़ीक़ी आलमी पैग़ंबर के रूप में नज़र आते हैं। गुप्ता साहब को मैंने दो किताबें बतौर हदिया दीं— एक 'अल्लाहु अकबर' और दूसरी 'हल यहाँ है'।

हक़ीक़ी मोमिन

मौजूदा दुनिया में अस्ल अहमियत यह नहीं है कि आदमी ने ब-ज़ाहिर किस हाल में ज़िंदगी गुज़ारी— अच्छे हाल में या बुरे हाल में। अस्ल अहमियत की बात यह है कि आदमी जिस हाल में भी हो, उससे वह ताल्लुक़-बिल्लाह की ग़िज़ा ले सके। ज़िंदगी का हर तजुर्बा उसे अल्लाह से क़रीब करने वाला साबित हो। उसकी रूह हर सूरतेहाल से रब्बानी ग़िज़ा लेती रहे। कायनात के हर मुशाहिदे में वह अल्लाह का जलवा देख सके। ज़िंदगी का हर ख़ुशगवार तजुर्बा उसे अल्लाह की रहमत की याद दिलाए और ज़िंदगी का हर तल्ख़ तजुर्बा उसके लिए

तक़वे का सबब बनता रहे। नाकामी भी उसे ख़ुदा की याद दिलाए और कामयाबी भी उसे ख़ुदा से क़रीब कर दे।

औलाद की तर्बियत

जनाब ख़ुरशीद अकरम सोज़ (पैदाइश : 1965) एक संजीदा और दीनी ज़ेहन रखने वाले इंसान हैं। वे एक तवील मुद्दत से 'अल-रिसाला' के क़ारी हैं। मौलाना से कई मर्तबा उनकी मुलाक़ात और ख़त-ओ-किताबत रही है। फ़रवरी 2002 की बात है। उन्होंने ख़त के ज़रिये मौलाना को बताया था— "मेरा एक ही बेटा है। मैं अपने बेटे को मदरसे की तालीम देना चाहता हूँ और दीन की ख़िदमत के लिए वक़्फ़ करना चाहता हूँ। इस सिलसिले में आपसे मशवरा दरकार है।"

मौलाना ने जवाबी ख़त में जो बात लिखी, वह हर एक वालिदैन के लिए एक रहनुमा नसीहत है। मौलाना ने लिखा था— "ख़ालिक़ के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ के मुताबिक़ आप सिर्फ़ अपने बच्चे की अच्छी तर्बियत कर सकते हैं, मगर आप अपने जज़्बात को अपने बच्चे पर नाफ़िज़ नहीं कर सकते। आपकी ज़िंदगी आपके हाथ में है और बच्चे की ज़िंदगी का मालिक ख़ुदा है। बच्चा माल और जायदाद की तरह वक़्फ़ करने की चीज़ नहीं है। वह ख़ुद अपनी आज़ादी से अपना फ़ैसला करेगा, जब वह होश सँभालेगा। उस वक़्त तक आप उसकी अच्छी तालीम-ओ-तर्बियत का इंतिज़ाम फ़रमाएँ, उसके बाद आला तालीम के लिए किसी अच्छे इदारे का इंतिख़ाब फ़रमाएँ।"

आम तौर पर वालिदैन इस फ़ितरी हक़ीक़त को नहीं समझते हैं। अनस बिन मालिक के हवाले से एक हदीस-ए-रसूल यह है—

أَكْرِمُوا أَوْلَادَكُمْ وَأَحْسِنُوا أَدَبَهُمْ.

"अपनी औलाद के साथ बेहतर सुलूक करो और उनको अच्छा अदब सिखाओ।" (इब्न माजा, हदीस नंबर 3671)

इस हदीस का मतलब यह है कि वालिदैन अपनी औलाद को ज़िंदगी का बेहतर तरीक़ा सिखाएँ यानी यह सिखाना कि बेटा या बेटी बड़े होने के बाद दुनिया में किस तरह रहें कि वे कामयाब हों, वे अपने घर और अपने समाज के लिए बोझ (liability) न बनें, बल्कि वे अपने घर और अपने समाज का सरमाया (asset) बन जाएँ। तर्बियत-ए-औलाद के ताल्लुक़ से अंग्रेज़ी का एक क़ौल है—

''Parents can only give good advice or put them on the right path, but the final shaping of a person's character lies in their own hands.''

यानी वालिदैन अपने बच्चों को अच्छी नसीहत कर सकते हैं या दुरुस्त रास्ते की तरफ़ रहनुमाई कर सकते हैं, लेकिन इंसानी शख़्सियत की फ़ाइनल तशकील ख़ुद इंसान के अपने हाथों में होती है। **डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम**

कैप्चा टेस्ट

इंटरनेट पर आप जब भी कोई नया ईमेल अकाउंट या किसी भी तरह का कोई अकाउंट बनाने जाते हैं तो कैप्चा (CAPTCHA) से आपका वास्ता ज़रूर पड़ता है। यह आड़े-टेढ़े हुरूफ़ पर मुश्तमिल एक तस्वीर होती है, जिसे पढ़कर दिए हुए बॉक्स में लिखना होता है।

कैप्चा एक आज़माइश है, जो वेबसाइट पर इस बात का यक़ीन करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है कि एक हक़ीक़ी इंसान वेबसाइट

पर है, कोई हैकर या सिस्टम को धोखा देने की कोशिश करने वाला सॉफ़्टवेयर प्रोग्राम तो नहीं है। इसका मक़सद यह होता है कि हैकरों को किसी फ़र्द या कंपनी वग़ैरह के पासवर्ड वाले अकाउंट्स के मिसयूज़ से रोका जाए। किसी सॉफ़्टवेयर प्रोग्राम के लिए इस तस्वीर में लिखे हुए हुरूफ़ को पढ़ना इंतिहाई मुश्किल है, लेकिन इंसान चंद सेकंड्स में इन अल्फ़ाज़ की शनाख़्त कर सकता है—

"A CAPTCHA is a type of challenge–response test used in computing to determine whether or not the user is human. It is a type of security measure known as challenge-response authentication. It helps protect you from spam and password decryption by asking you to complete a simple test that proves you are human and not a computer trying to break into a password protected account."

यह एक मिसाल है, जिससे इंसानी ज़िंदगी की एक फ़ितरी हक़ीक़त को समझा जा सकता है। इंसानी ज़िंदगी में पेश आने वाली मुसीबतों की हैसियत 'चैलेंज रिस्पांस टेस्ट' (challenge-response test) की है। इससे इंसान को यह मौक़ा मिलता है कि वह अपने अंदर आला इंसानी सिफ़त पैदा करे। वह ज़ेहनी इर्तिक़ा के सफ़र पर चल सके। वह ख़ुद को और अच्छा इंसान बना सके यानी दुनिया में मुश्किलात क्यों पेश आती हैं? वह इसलिए कि एक संजीदा इंसान को जब मुश्किलात पेश आएँ तो वह सब्र से काम ले, अपना एहतिसाब करे और मुस्बत ज़ेहन के साथ अपने ज़िंदगी की री-प्लानिंग करे, ताकि उसकी मारिफ़त का सफ़र बिला रोक-टोक जारी रहे। **डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम**

अक़्वाल-ए-हिकमत

आदमी के लिए हमेशा दो में से एक के इंतिख़ाब का मौक़ा होता है, मगर नादान आदमी तीसरा इंतिख़ाब लेने की कोशिश करता है, जो मौजूदा दुनिया में सिरे से किसी के लिए मुमकिन ही नहीं।

***

ज़ाती इंटरेस्ट के मामले में हर आदमी हीरो बना हुआ है और जहाँ ज़ाती इंटरेस्ट का मामला न हो, वहाँ हर आदमी ज़ीरो नज़र आता है।

***

लोग जो कुछ चाहते हैं, उसे वे पाते नहीं, क्योंकि वे उसकी क़ीमत देने के लिए तैयार नहीं होते।

***

किसी मुसलमान के पास शिकायत की बातें हैं और किसी मुसलमान के पास फ़ख़्र की बातें। एक ने सब्र को हज़्फ़ कर रखा है और दूसरे ने शुक्र को।

***

सबसे आला इंसानी सिफ़त संजीदगी है और सबसे पस्त इंसानी सिफ़त कमीनगी।

***

हक़ के आगे न झुकना ख़ुदा के आगे न झुकना है। ऐसे लोग यक़ीनन ख़ुदा के बाग़ी हैं, ख़्वाह ब-ज़ाहिर वे रुकू और सजदा कर रहे हों।

***

लोग बोलना जानते हैं, मगर वे सुनना नहीं जानते। अगर वे सुनने वाले बन जाएँ तो वे ज़्यादा बेहतर तौर पर बोलने वाले बन सकते हैं।

बहुत-से लोग मौलाना के एहसानमंद हैं

अल-मौरिद (लाहौर) में हफ़्ता-वार बैठक थी। ख़ुदकुशी का मौज़ू ज़ेरे-बहस था। एक नौजवान अपनी आप-बीती कहने लगा। नौजवान की बातों का ख़ुलासा यह है— "मैं ख़ुदकुशी के सारे अमल से गुज़रकर आया हूँ। शदीद इज़्तिराब की कैफ़ियत से दो-चार, ज़िंदगी से बेज़ार। हर वक़्त इसी क़लक़ में मुब्तला। कब वह लम्हा आए कि इस क़ैद-ए-हयात से आज़ाद हो जाऊँ? बिल-आख़िर एक दिन मैंने यह ठान लिया था कि आज मुझे ख़ुदकुशी करनी है। इसके लिए मैं यूट्यूब पर सर्च कर रहा था कि मरने का आसान तरीक़ा क्या हो सकता है। इसी दौरान अचानक मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की एक वीडियो क्लिप सामने आ गई। न चाहते हुए भी मैंने इस वीडियो पर क्लिक कर दिया। इस वीडियो ने मेरी ज़िंदगी की काया ही पलट दी। वह लम्हा! मैं जानता हूँ या मेरा ख़ुदा! कई दिनों तक तसलसुल के साथ मौलाना को सुनता रहा। इसके बाद अपने मुआलिज साइकेट्रिस्ट के पास पहुँचा। वे हैरान थे कि इतने दिन से मेडिसिन इस्तेमाल नहीं की, लेकिन इस क़दर हश्शाश-बश्शाश कैसे? मैंने बताया कि मौलाना ने मुझे ख़ुदकुशी से बचाकर ख़ुदा से मिलवा दिया। अगर इस वक़्त मौलाना ज़िंदा होते तो मैं उनसे मिलने ज़रूर जाता।"

हक़ीक़त यह है कि बहुत-से लोग मौलाना के एहसानमंद हैं। एक तवील फ़ेहरिस्त को तो मैं जानता हूँ, गुमनाम पता नहीं कितने होंगे? ये लोग अपनी ज़िंदगियों से बेज़ार हो चुके थे। मौलाना ने अपनी गुफ़्तुगू-ओ-तहरीर के ज़रिये उनकी ज़िंदगी को एक नया हौसला दिया, उम्मीद की किरण दिखा दी, सिसकियों को मुस्कराहटों में तब्दील कर दिया और एक ख़ास अंदाज़ से उन्हें उनके हक़ीक़ी रब से रूशनास करवाकर

ब-मक़सद ज़िंदगी के रास्ते पर लगा दिया और कितनों को मौत व हलाकत की वादी में जाने से बचा लिया।

मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। जब भी ना-उम्मीदी का शिकार होने लगता हूँ, हर बार मौलाना की तहरीर लड़खड़ाती व डगमगाती ज़िंदगी को एक नई सिम्त अता करती है, एक हौसला नसीब होता है, मक़सद-ए-हयात तरोताज़ा हो जाता है, रब तआला के क़ुर्ब की जुस्तुजू पैदा हो जाती है। ख़ुदा मौलाना की लहद (tomb) पर रहमतों की बरखा बरसाए और उन्हें उनके इस अमल का अपने शायान-ए-शान अज्र दे।

जरीर हुसैन

ख़बरनामा इस्लामी मरकज़— 279

1. माशा-अल्लाह! 'अल-रिसाला' में मौजूद एक-एक आर्टिकल मौजूदा परेशानकुन हालात से निपटने का ख़ूबसूरत हल पेश करता है। अगर 'अल-रिसाला' का पैग़ाम हर मुसलमान तक पहुँच सके और वे उसे समझ जाएँ तो हमारी ज़िंदगियों में एक ख़ामोश इंक़िलाब आ सकता है। जज़ाकल्लाह ख़ैरा कसीरा!

डॉक्टर मुहीउद्दीन, आंध्र प्रदेश, इंडिया

2. 9 फ़रवरी, 2022, ईरान कल्चर हाउस, नई दिल्ली के ज़ेर-ए-एहतिमाम एक ऑनलाइन प्रोग्राम मुनअक़िद किया गया। प्रोग्राम का मौज़ू था— हज़रत फ़ातिमा की तालीमात। सी०पी०एस० इंटरनेशनल की चेयर पर्सन डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम ने इस प्रोग्राम को ख़िताब किया और पैग़ाम दिया कि हज़रत फ़ातिमा की ज़िंदगी से हमें अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में क्या सबक़ मिलता है और हम ख़वातीन मौजूदा दौर में उनकी तालीमात को कैसे

अपनी ज़िंदगी पर अप्लाई कर सकती हैं। ख़िताब काफ़ी पसंद किया गया।

3. विद्या ज्योति कॉलेज ऑफ़ थियोलॉजी, नई दिल्ली में सी०पी०एस० इंटरनेशनल दिल्ली की चेयर पर्सन, डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम और सी०पी०एस० मेंबर मौलाना फ़रहाद अहमद ने 2 सितंबर, 2022 को स्टूडेंट्स के सामने क़ुरआन, पैग़ंबर-ए-इस्लाम और मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की तालीमात के मुताल्लिक़ अंग्रेज़ी ज़बान में लेक्चर दिया। लेक्चर के बाद सवाल-ओ-जवाब का सेशन हुआ। डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम ने सवालात के जवाब दिए। आख़िर में तमाम लोगों को अंग्रेज़ी तर्जुमा-ए-क़ुरआन और दीगर इस्लामी लिटरेचर दिया गया।

4. कैप्टन ख़ुर्रम क़ुरैशी एयर इंडिया में पायलट हैं। इसी के साथ वे एक संजीदा दाई भी हैं। उनकी दावत का एक तरीक़ा यह है कि वे जहाँ भी जाते हैं, मक़ामी लोगों से मुलाक़ात करके दावती मवाक़े तलाश करते हैं और दावती मिशन को आगे बढ़ाने का काम करते हैं। नीचे उनके दो अस्फ़ार का हाल उनके अल्फ़ाज़ में ज़िक्र किया जा रहा है—

   ‘‘On 27.07.2022, I met CPS members Muhiuddin Sahab and Firdous Sahab in Goa. Firdous Sahab is the son of Siraj Sahab, our senior CPS member, who has been distributing Quran and has been engaged in dawah for an extended period in Goa. His son Firdous Sahab has been focusing on Quran distribution and carrying the family contribution towards the cause of God. I also met Muhiudddin Sahab, who has been doing amazing work on the

Quran translation in Bengali and is reaching out with peace concepts amongst Muslims. Both are doing amazing work. A team expansion initiative with monthly meetings had been agreed upon to take the Quran distribution and building of dayees. All are requested to do special dua for the Goa Team. My experience only brings a feeling of Alhamdulillah."

''On 28.07.2022, I Met brother Sajjad. He is an administrative officer in London's Central Mosque, one of the largest mosques in Britain. He is a great admirer of Maulana. I gifted a set of Maulana's English books for their newly opened library. They have also been distributing Quran, and my meeting with him went very well, Alhamdulillah. Insha Allah, many people will now benefit from the books of Maulana Wahiduddin Khan that are available in their beautiful library. All CPS members are requested to do continuous dua."

5. Dawah Experience: Today (28.03.2022), I distributed Maulana's English translation of the Quran to my Professors and Collegemates at Anjuman-e-Islam's Kalsekar Technical Campus. One of my Professors said, ''It is essential to read the Quran with its translation. Your work will encourage others as well." My seniors were

looking for the Quran translation a day before, and coincidentally I gave it to them today. I also gifted the book, ‘‘God Arises”, to one of my Professors. Some non-Muslim students were asking, ‘‘How can we read this? It is for your religion.” I told them, ‘‘You can read it without any hesitation. It is the book for humanity, and this copy of the Quran has been translated into clear English.” I Presented Quran copies to eight Faculties members and 40 of my collegemates from the Department of Computer Science. All of them accepted it with pleasure. I want to acknowledge CPS Team Mumbai for allowing me to do dawah work. May Allah reward everyone and accept our deeds. (Nemat Khan, CPS Mumbai)

6. Centre for Peace and Spirituality International, founded by Maulana Wahiduddin Khan, aims to promote and reinforce the culture of peace. I was recently at one of their zoom events as one of the speakers, talking about Emotional Intelligence. These group of women are hard-working, intelligent, kind, determined to spread the message of goodness and work tirelessly to leave a significant positive imprint on the minds of their viewers. Alhamdulillah, I must say they are all an inspiration. The miraclous part of this story is that they have not met me or each other! And I can safely say they haven’t worked with each other as well before this coincidence. The common

link is me. And both these groups decided to show their appreciation by sending me a gift each. They asked for my home address around the same time, and I was expecting the gifts to arrive around the same time. And they did. One sent me a beautiful ‘‘tree of life” inspired bookshelf. And the other sent me 22 gems from the treasure of Maulana Wahiduddin Khan’s Books. So I asked my children to assemble the bookshelf (home-schooling skills) and place these books on it. The whole picture means so much more than a bookshelf with books. It reminded me of Allah’s mercy, His plan, His love, and the love He bestows in the hearts of humans for each other. The beauty of our deen is that we gift each other to increase our love and appreciation for our brothers and sisters in Islam. I pray for their families the best of both worlds. JazakAllah Khaira to the thoughtful souls. You are loved and appreciated. May we be neighbours in Jannah al Firdous Ameen. (Sr. Iram Bint Safia, Motivational Speaker, Mentor)

7. Interfaith Dialogue Meet: A Dawah program was organized in Chennai on the 6th and 7th of May 2022. The CPS Chennai and CPS Bangalore Teams participated in the Meet together. The details of this two-day program are as follows. On May 6, the CPS Team met the renowned Indian Soil Biologist, Ecologist and Professor Dr Sultan Ahmed Ismail, whom the Government of Tamil Nadu appointed

a State Development Policy Council Member on 06.06.2021. The Chennai Team has been meeting the Professor for the last 5 years; from time to time, they have presented many books of Maulana to him. We visited his residence, and after the initial discussion, we introduced the CPS Mission. Dr Ismail, too, shared his 50 years of experience with us. And we also had the opportunity to share important things related to the CPS mission with him. Undoubtedly, this meeting proved to be a learning experience for us. Later on, a workshop on 'The Life, Thoughts, and Peace Works of Maulana Wahiduddin Khan' was held on May 6 at the Madras Institute of Development Studies (MIDS), Adyar, Chennai, which is a leading research institute in India. Professor Ananta Kumar Giri of MIDS assisted us in organizing this program. He presented his views on Maulana's book 'The Prophet of Peace' at the beginning of the program. Scholars and intellectuals from around the country also participated in this program through Zoom. Chennai CPS member Mr Faiz Qadiri Spoke on Maulana's Life, Thoughts and Services in Tamil, which was translated into English by writer and thinker Mr Sridhar Subramaniam.

Mr Siddhartha, Founder of Fireflies Intercultural Centre in Bangalore, who participated through Zoom, commented on the importance of Maulana's literature in the present times. Then, a few questions were asked

about Maulana's views on various aspects, especially on the intolerant attitude shown by a section of the Muslim community for which responses were given. At the end of the program, Maulana's English books were presented to Prof. Anant Kumar Giri as a gift to the MIDS Library. The session lasted for two and a half hours. And the program ended with the prayer of Hafiz Syed Iqbal Umri.

On May 7, 2022, in Hotel Al Noor Palace, Chennai, CPS Chennai and CPS Bangalore Teams discussed essential issues related to dawah. The Bangalore team shared their vision and made a presentation. The members present in this session also shared their views. This session proved to be very important in terms of learning.

A meeting with Swami Shrihariprasad Ji was arranged, and on May 7 2022, the team visited his Ashram. Swamiji met Maulana a few years ago and is a supporter of CPS, and he has been holding Interfaith Dialogue on Peace and Non-Violence for the last few years. Violence, patience, peace, and political interpretation of religion were discussed in the form of questions and answers with Swamiji and the members of the Ashram. The team presented them with some essential books of CPS in English, and they received them well. They, too, gifted books to our members. Swamiji invited the CPS Team to

participate in his next program on non-violence. The meeting lasted for two hours. This was the last program of the trip. (Faiz Qadri, Tanveer Ilahi Omeri, Chennai)

8. Request to Attend Sunday Class at CPS: Assalmualeikum! I hope my email finds you in the best of health and spirit. Two years ago, my sister sent me the videos of Maulana Wahiduddin Khan. This was the first time I had heard someone focus so much on the minute details of how to live in this world so that we have a good world here and an even better one in the world Hereafter. Years passed, and I got busy just living life, to tell you the truth, surviving in life. One day when I was utterly dejected and rejected from this life, I came across a video of Maulana in which he told how the Chinese built their empire. The quote, ‘‘Zindagi mein itna peeche aa gaye ki aage badhne ke seva koi raasta nahi”, stuck with me and helped me to move forward in life. I am utterly thankful to God for allowing me to be a disciple of Maulana; even though I regret not meeting him in person in this life, his preaching will always live in my memory. As a beginner in faith, while contemplating the matters of life and the Hereafter, lots of questions arise in my mind, and at times, I am unable to grasp meanings from the Quran and Hadith. That is why I would like to

attend weekly classes at the CPS Centre, New Delhi that will help me to become a better believer and come across many, many unknown teachings and keep the wheel of learning ever moving. Hoping to see a positive reply soon. Thanks & Regards. (Ayesha Rizvi, aye****rizvi@gmail.com).

9. पूरी दुनिया में ऐसे इंसानों की तादाद बढ़ रही है, जो क़ुरआन पढ़ना चाहते हैं। इस सिलसिले में अमरीका के दो अलग-अलग हॉस्पिटल से ईमेल के ज़रिये मौसूल होने वाले पैग़ामात नीचे में दिए जा रहे हैं—

To: S Khan Goodword,

Subject: Are you able to spare any free Qurans?

Dear S khan, Many of our patients are asking for Qurans in the psychiatric facility. Would you be able to send any to us, please?

(Leslie Schotz, D. Min., BCC NY, Isch****@ northwell.edu)

To: info@goodword,

Subject: Qurans for hospital use

I want to purchase 50 small Qurans (not hard cover) for use at our hospital (Grey Nuns Community Hospital). Could you please let me know how I could arrange this? Thanks. (Marjorie Charest, Community Hospital, marjorie****@covenanthealth.ca)

इन दोनों हॉस्पिटल में क़ुरआन की मतलूबा तादाद पहुँचा दी गई है।

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

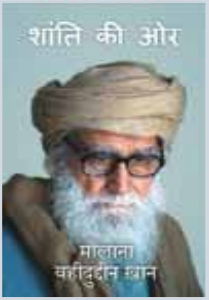

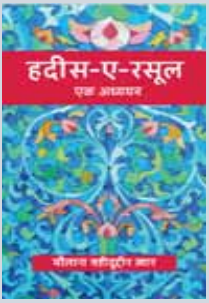

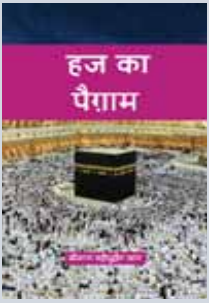

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

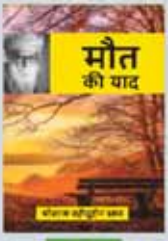

₹40/-

₹20/-

₹40/-

₹30/-

₹45/-

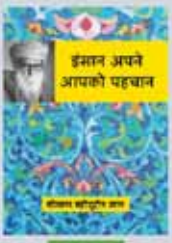

₹20/-

₹40/-